मूल्य रु० ६/-

भाद्रपद-आश्विन २०५८ सितम्बर २००१

स्वदेशी

राष्ट्रीय स्वाभिमान, आर्थिक स्वावलंबन, राष्ट्रीय पुनर्रचना तथा स्वदेशी संदेश की संवाहिका पत्रिका

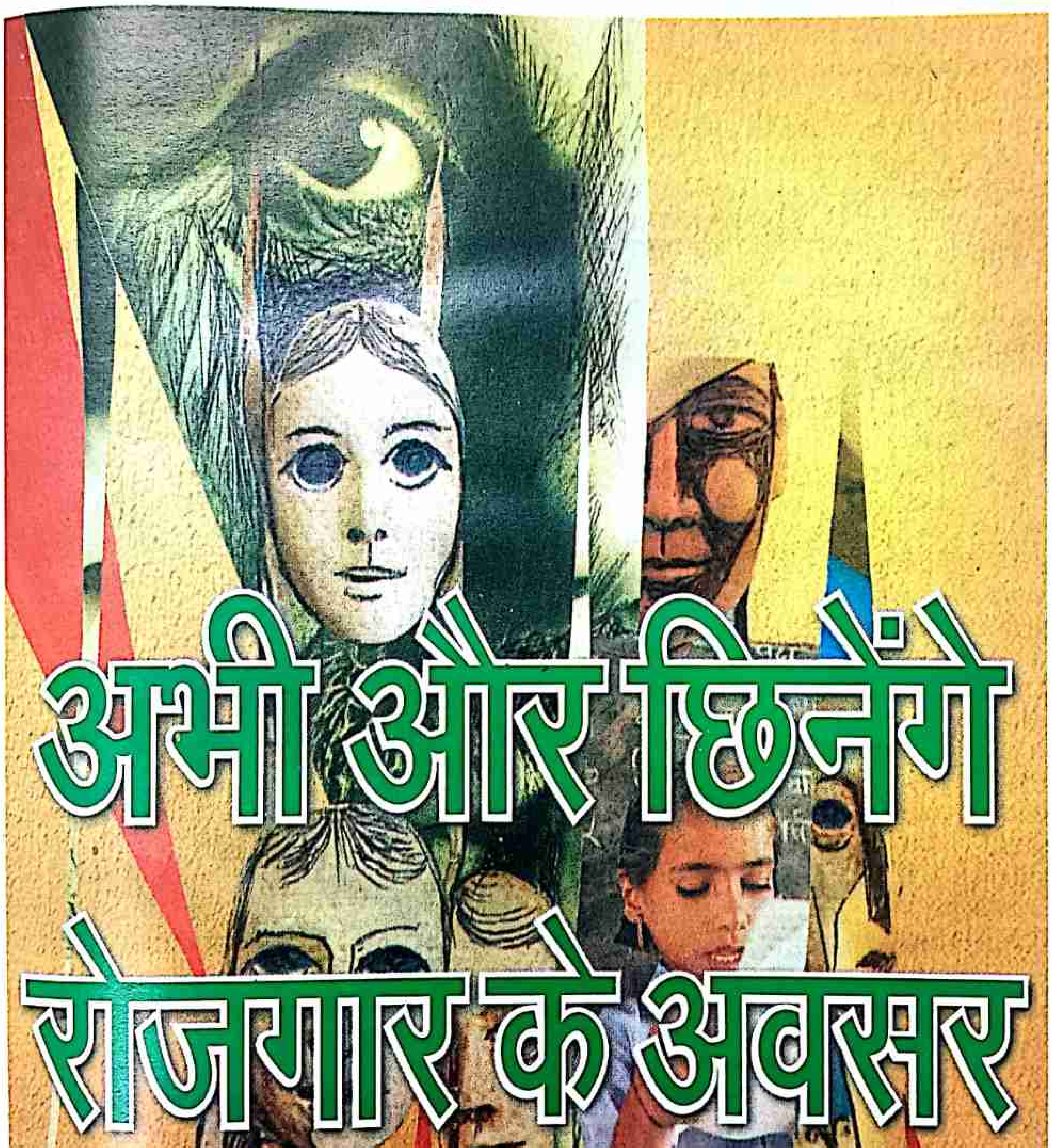

अभी और छिनेंगे रोजगार के अवसर

Scanned with OKEN Scanner

स्वदेशी सहयोग

अब लाज तुम्हारे हाथ में है,
विदेशी कम्पनी पास में है।
देश का भविष्य हमें बचाना है,
स्वदेशी का संदेश सर्वत्र ले जाना है।

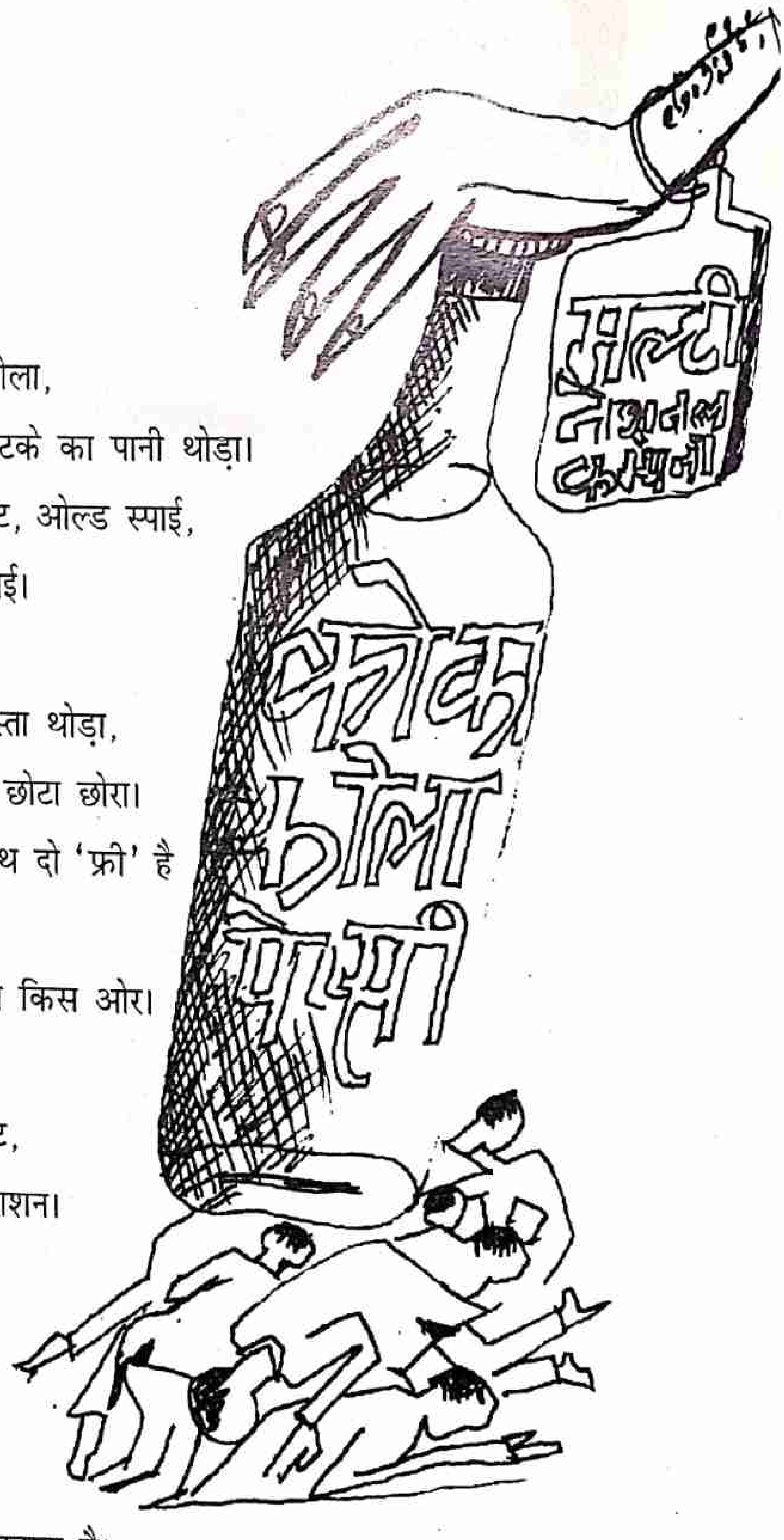

नहीं पीनी है पेप्सी, मिरिंडा, कोका कोला,
बेहतर है इससे सतू, सिकांजी नीबू, मटके का पानी थोड़ा।
नहीं चाहिए मैकअप में रेवलोन, वेल्वेट, ओल्ड स्पाई,
बेहतर है इससे दूध, मक्खन और मलाई।

बेच रही है विदेशी कम्पनी सामान सस्ता थोड़ा,
आगे चलकर क्या बेचेगा आपका यह छोटा छोरा।
दो के साथ एक 'फ्री' है पांच के साथ दो 'फ्री' है
लगी हुई है यह होड़
आगे चलकर हम 'फ्री' है फिर जायेंगे किस ओर।

नीम, चंदन, अंवाले को करेंगे ये पेटेन्ट,
चक्की चलाएंगे हम बचेंगे ये अपना राशन।

वक्त आपके हाथ में हैं,
स्वदेशी आपके पास में है।
स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना है,
एक भाई को दूसरे भाई का सहयोग बढ़ाना है।

■ **प्रद्युमन सिंह बिष्ट**, जे–२८४, करतार नगर, दिल्ली–५३

Scanned with OKEN Scanner

अपनी वार्ता

प्रिय पाठक वृन्द,

दोहा, कतर में होने जा रहे विश्व व्यापार संगठन की बैठक में विकासशील देश अपने पक्षों को सबलता से रख पाएंगे, इसकी आशा जगती दिख रही है। सार्क देशों में भी इस विषय पर आपसी सहमति बन रही है। स्वदेशी के प्रहरी इसे सुखद क्यों नहीं मानेंगे हम पहले से ही अपने देश के नेतृत्व से विकासशील देशों को प्रतिनिधित्व देकर वैश्विक अर्थ-युद्ध में आगे आने की प्रेरणा देते रहे हैं।

आज विषम विकास-नीतियों के दुष्परिणाम दिन-दिन बढ़ती बेरोजगारी के रूप में सामने आ रहे हैं शोषक अर्थव्यवस्था का क्रूर प्रतिफलन बेरोजगारी में होती है। कभी भारी औद्योगिक विकास के कारण भूखमरी और अपराध की परिस्थितियाँ बनीं, अब दूसरे चरण के कथित आर्थिक सुधारों से और तीव्रता से बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। स्वदेशी पत्रिका का यह अंक बेरोजगारी को प्रधान विषय वस्तु बनाकर आप पाठकों तक पहुँच रही है। आशा है आप यह अंक पसंद करेंगे।

नमस्कार।

आपका

प्रमोदकुमार दुबे

अनुक्रम

अग्रलेख

अभी और छिनेंगे रोजगार के अवसर
विक्रम उपाध्याय................../६

रोजगार के अवसर उलझाएगा टॉस्क फोर्स
डॉ. महेश शर्मा................../११

रोजगार नीति कैसी हो?
डॉ. भरत झुनझुनवाला................../१४

लेख

स्वदेशी से दूर रहकर दुर्दशा में है आजादी
भानुप्रताप शुक्ल................../२४

उदारीकरण के दस वर्ष और देश की स्थिति
धीप्रज्ञ द्विवेदी................../२८

इक्कीसवीं सदी का रावण
डॉ. अमित शर्मा................../३३

संस्कृति

अब वे वंशाणु से लड़ रहे हैं आर्य विरोधी लड़ाई
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे................../३५

रपट

ट्रिप्स और दवाओं की सुलभता पर अंतरराष्ट्रीय विचार गोष्ठी सम्पन्न..../३९

विश्व व्यापार के नियमों में भेदभाव नहीं होना चाहिए................../४३

किसानों के हित में एक ऐतिहासिक सभा................../४५

स्तंभ

पाठकनामा/४, उन्होंने कहा/४

संपादकीय कार्यालय : ६०, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-११० ००१ ● दूरभाष : ३०१८१७५
ई-मेल : swadeshisampark@rediffmail.com

स्वदेशी पत्रिका

वर्ष-६, अंक-१२

भाद्रपद-आश्विन २०५८, सितम्बर, २००१

:: अमर वाणी ::

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जैसे आकाश में सब लोक-लोकांतरों में पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही वह सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक, कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

• • •

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

हे सब प्रजा के स्वामिन् परमात्मन् ! आपसे भिन्न कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़, चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं कर सकता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और इच्छा करें, वह-वह हमारी कामना सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्य के स्वामी हों।

(भक्ति दर्पण)

मुख्य संपादक :
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

कार्यकारी संपादक :
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

मूल्य : एक अंक – ६ रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क – ६० रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क – १०००/-

विशेष सूचना : अपनी सदस्यता सूची एवं सदस्यता फार्म कृपया अपना नाम व पता, पिनकोड सहित साफ-साफ शब्दों में लिखकर भेजें।

Scanned with OKEN Scanner

पाठकनामा

रचनाकार की अनुभूति

प्रिय संपादक,

स्वदेशी पत्रिका में प्रकाशित संस्कृति स्तंभ में दुश्मन की बेटी और नूरमियाँ के बीच से गुजरते हुए मैं स्वतंत्र चेता रचनाकार और सत्ता के अधीन रहने वाले रचनाकार का अंतर समझने की कोशिश करता रहा, पर लगा कि कुछ बातें बिल्कुल व्यवहार से ही सीखी जा सकती हैं। एक कवि होने के नाते मैं अपने सरोकारों को स्वयं महसूसता हूँ। देश के लिए भी अपना सरोकार समझना होगा और तब क्या रचनाकार एक स्वार्थ में नहीं बँधेगा? इस्लामिक देश की शायरा परवीन शायद इसी दायरे में बँध गई है। भारतीय जीवन दर्शन इससे ऊँचा है पर वह भी सरोकारों में बँधकर देश के स्वभाव से तो जुड़ेगा ही। कुल मिलाकर लेख का विषय अच्छा लगा।

रोहित कंचन
डालटेन गंज, झारखण्ड

कुपूत एनरॉन

प्रिय संपादक,

कहते है डायन भी एक घर छोड़कर खाती है। अर्थ-दैत्य एनरॉन ने तो अपना घर भी नहीं छोड़ा। इस अमेरिकी कंपनी ने खुद अमेरिकी राज्य कैलिफोर्निया में भी तबाही मचा रखी है। वहाँ का प्रशासन भी इसके खिलाफ कार्यवाई करने में लगा है। अच्छा हो कि यह जहरीला साँप बिल में ही पिट-पीटा कर मारा डाला जाए, ताकि यह भारत जैसे देश को पीछा करना छोड़ दे।

- प्रसिद्ध चौरसिया,
पूर्वी चम्पारण बिहार

एक सुझाव

संपादक जी,

स्वदेशी पत्रिका मुझे एक अनजान व्यक्ति के हाथ से लेकर देखने का अवसर मिला। मैं यह देखकर दंग रह गया कि पत्रिका ने देश की दुखती रंगों पर बड़े विश्वास से अँगुली रखी है। अमेरिका की आर्थिक मंदी भारत को या दुनिया का प्रभावित क्यों कर रही है? यह प्रश्न मेरे मन में घुमड़ता रहा है। निर्यात से आने वाले धन के लिए हम विश्व के दूसरे देशों में भी बाजार की खोज करनी चाहिए और आवश्यक आवश्यकताओं के लिए देश को पूरी तरह आत्मनिर्भर करना चाहिए। ऐसा करने पर अमेरिकी आर्थिक मंदी से हमारी अर्थ व्यवस्था प्रभावित नहीं होगी।

- मनोज श्रीवास्तव
कानपुर, उत्तर प्रदेश

उन्होंने कहा

स्वतंत्रता के बाद हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि समस्त जटिल विविधताओं एवं भारी कठिनाइयों के बावजूद लोकतंत्र एवं एकता का निर्माण है।

माननीय राष्ट्र...
श्री के० आर० नारायण

उरुग्वे दौर के समझौते में विकसित देश द्वारा किए वायदों को पूरा करने के बा... ही डब्ल्यूटीओ में नए दौर की बातची... शुरु हो।

प्रधान...
श्री अटल बिहारी वाजपे...

अर्थव्यवस्था की खुशहाली की बा... संदिग्ध है क्योंकि आंकड़ों और वास्तवि... अनुभव में काफी फासला है।

कार्यकारी निदेशक, टाटा...
आर० गोपालकृष्ण...

विश्वव्यापी मंदी, आन्तरिक उदारीकरण और डब्ल्यू.टी.ओ. से कारोबार में चुनौती बढ़ गई है।

प्रबंध निदेशक, इन्फो...
मदन नीलकणी

अमेरिकी मंदी हमारे अर्थव्यवस्था के लिए लाभदायक है।

अध्यक्ष नास्कॉ...
किरण कार्निक

मात्रात्मक प्रतिबंध हटने के बाद के सस्ते आयात ने हमें दुर्बल कर दिया है।

अध्यक्ष इ...
मनी अलमा...

२००१ में देश में नौकरियों के अवसर २०% सिकुड़ जाएंगे।

सीईओ, हेविट एसोसिएट्स
गोपाल कृष्णा

Scanned with OKEN Scanner

'प्रत्येक को वोट' और 'प्रत्येक को काम'

बेरोजगारी की समस्या और समाधान आर्थिक चिंतन की मूल–बिन्दु से संबंधित है। पश्चिमी अर्थशास्त्र की पहली मान्यता ही यही है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः वैयक्तिक है जिसका अलग से कोई सामाजिक पहलू नहीं है – अर्थात् पूँजीवाद की विकास दृष्टि में वही व्यक्ति आर्थिक–शक्ति का अधिकारी है जो असीमित स्पर्धा में अन्य सभी व्यक्तियों को कुचलता हुआ आगे बढ़ता जाए। इसीलिए यह अर्थ–दृष्टि अर्थ–योद्धाओं को जन्म देता है। इसमें सर्वे भवन्तु सुखिनः – के लिए कोई स्थान नहीं है। मार्क्सवादी चिंतन ने श्रम को स्थापित किया। श्रम को विकास का आधार माना। इनके विकास की मान्यता में भी द्वंद्व ही था अर्थात् योग्यतम व्यक्ति अथवा समुदाय का वर्चस्व। जिसे इन्होंने व्यवहारिक रूप से विफल होते पाया। आज पूँजीवाद के रास्ते आगे बढ़ते देशों की राज्य और न्याय व्यवस्थाएँ जन–संहार की भूमिका चरितार्थ करती नजर आती है; चीन जैसा देश जिसने साम्यवाद की नींव पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया है, बेरोजगारी से उत्पन्न हो रहे अपराध को नियंत्रित करने के क्रूरतम उपाय अपनाने पर विवश है। यह जनसंहारक परिस्थिति साम्यवाद और पूँजीवाद के मूलतः भौतिक दृष्टि कोणों की समानता के कारण बनी है। अभिप्राय यह कि खोट दोनों ही अर्थचिंतन में है दोनों ही बेरोजगारी के उत्पादक विकास–मार्ग हैं।

भारतीय अर्थ दृष्टि इन दोनों से अलग तीसरे मार्ग का संधान करती है। बाल्मीकि कृत रामायण का एक प्रसंग है – श्री रामचन्द्र ने भरत से पूछा कि क्या तुम ऐसे उद्यमों को अविलम्ब प्रारंभ तो करते हो जिनमें लगत कम और उत्पादन अधिक हो –

कच्चिदर्थं विनिश्चत्य लघु मूलं महोदय। क्षिप्र मारमसे कार्यं न दीर्घयसि राघवः।।

निश्चय ही यह हमारी सनातन अर्थ दृष्टि छोटे उद्योगों के विस्तार से व्यापक रोजगार सृजन और अधिक से अधिक उत्पादन का पक्ष लेती है। इस अर्थ दृष्टि की उपेक्षा के कारण बेरोजगारी की जटिल समस्या बढ़ती चली गई। पं. दीनदयाल उपाध्याय का कथन है – **'हमने पश्चिम की तकनीकी प्रक्रिया का आँख बंद करके अनुकरण किया है। हमारे उद्योग का स्वाभाविक विकास नहीं हो रहा। ये हमारी अर्थ व्यवस्था के अभिन्न व अन्योन्याश्रित अंग नहीं अपितु ऊपर से लादे गए हैं . . . (इनका विकास) विदेशियों के अनुकरणशील सहयोगी अथवा अभिकर्ता कतिपय देशी व्यापारियों द्वारा हुआ है। यही कारण है कि भारत के उद्योगपतियों में, सबके सब व्यापारी आढ़तियों तथा सटोरियों में से आए हैं। उद्योग एवं शिल्प में लगे कारीगरों का विकास नहीं हुआ है।' पं. दीनदयाल का मत है, 'प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है, वैसे ही 'प्रत्येक को काम' यह आर्थिक प्रजातंत्र का मानदण्ड है।** प्रत्येक को वोट डालने का अधिकार मिला, लेकिन प्रत्येक को रोजगार की गारंटी क्यों नहीं मिली? स्वतंत्रता मिली लेकिन आर्थिक पराधीनता बनी रही। बेरोजगारी आतंक और अपराध की जननी है। इस समस्या का निदान देश की जन–क्षमता को देश की उन्नति के लिए एक बड़े ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग करने से हो सकता है। पर इस मार्ग में वे लोग बाधक है जिन्हें आर्थिक पराधीनता को दूर करने में अपने वर्चस्व की क्षति दिखती है। इसके अतिरिक्त कृषि जैसे व्यापक रोजगार देने वाले क्षेत्रों की घोर उपेक्षा उसी तरह हुई जैसे लघु उद्योगों की हुई। इसके बदले ऐसे क्षेत्रों को बढ़ावा दिया गया जिसकी उपयोगिता हमें दुनिया की दौड़ में शामिल करती दिखती है, जिनका आधार ठोस नहीं है। एक ओर कृषि संबंधी उत्पादन – आटा, चावल, तेल की जीवन यापन संबंधी आपूर्तियों में स्थाई ग्राहकता प्राप्त करने के लिए बहुदैशिक कंपनियों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है जिसमें व्यापक रोजगार सृजन की संभावना है, दूसरी ओर इलैक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी को बहुत अधिक उत्साहित किया जाने लगा जिसमें अवसर और स्पर्धा अधिक है और पराश्रय भी। इसका परिणाम आज प्रतिभावानों की बेरोजगारी के रूप में सामने आ रहा है। आज की वैश्विक आर्थिक मंदी के दौर में एक सर्वेक्षण के अनुसार इलैक्ट्रॉनिक क्षेत्र में एशिया महादेश पर २० लाख बेरोजगारों का भार बढ़ने वाला है।

मॉर्डन फूड, बाल्को इत्यादि सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े–बड़े उपक्रमों की भांति अभी तेरह उपक्रम विनिवेश के लिए सूचीबद्ध किए गए हैं निश्चय ही इनमें भी छंटनी होगी और बेरोजगारी बढ़ेगी, सरकारी कार्यालयों तथा बैंकों में भी रोजगार संभावनाएँ कम हो रही हैं साथ ही सांसदों के वेतन और खर्च में वृद्धि हो रही है। यह अंतर्द्वन्द्व स्वस्थ व्यवस्था का द्योतक बिल्कुल नहीं है। इस विकास की परिकल्पना हताश करने वाली होगी। इससे उत्पीड़न और अराजकता बढ़ेगी और समाज का नैतिक पतन होगा। इन उलझनों में दिन–दिन कसती देशवासियों की साँसों को कैसे मुक्त हवा मिलेगी? यह प्रश्न हमें एक मात्र समाधान के रूप में स्वदेशी अर्थ–चिंतन के नए स्वरूप से परिचय करा सकता है। जिन लोगों को स्वदेशी अर्थ–चिंतन में दुनिया की दौड़ में पिछड़ने का भय दिखता है उन्हें आर्थिक लोकतंत्र की आवश्यकता पर अनेक पक्षों से विचार करने की जरूरत होगी और यह स्वीकार करना होगा कि कुछ थोड़े से लोग आर्थिक तानाशाही चलाने में अधिक दिन कामयाब नहीं रह सकते, बड़ी तेज गति से जन जागरण हो रहा है।

ooo

तेरा वैभव अमर रहे माँ! हम दिन चार रहें न रहें

भारत–माता की भक्ति के सनातन–प्रवाह में मृत्यु नहीं; अमृत है, बार–बार जन्म की निरंतरता। भारत केवल देह जगत का नाम [नहीं]; देहेतर अस्तित्व का अमरलोक भी है। देह के अंत से हमारा अंत नहीं होता। हाँ, यह दुखद है कि अबतक हम अपनी ही जननी [जन्म]भूमि के आँचल में व्यवस्था जनित दोषों के कारण असुरक्षित हैं अन्यथा विदेशी षड्यंत्रों से प्रेरित होकर देश में चलाए जा रहे [प्र]तिबंधित नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा जैसे आतंकी संगठन के हाथों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चार प्रचारकों श्यामल कान्ति [से]नगुप्त, दिनेन डे, सुधामय दत्त और शुभंकर चक्रवर्ती का दैहिक–अंत नहीं होता अपितु भारत माता के चरणों में उनका जीवन पर्यन्त [नै]वेद्य अर्पित होता रहता। स्वदेशी पत्रिका की ओर से इन पूज्य राष्ट्रभक्त हुतात्माओं को कोटिशः श्रद्धांजलियाँ अर्पित हैं।

Scanned with OKEN Scanner

अग्रलेख

अभी और छिनेंगे रोजगार के अवसर

विक्रम उपाध्

भारत ही नहीं लगभग सभी विकासशील देशों में इस बात को लेकर मंथन चल रहा है कि उनको वैश्वीकरण ने क्या दिया, और बदले में उनसे क्या लिया। वैश्वीकरण का एक पहलू उन्हें मजबूर कर रहा है कि वे विकसित देशों के शोशेबाजी को अपनाए रखें, तो दूसरा पहलू यह चेतावनी दे रहा है कि न संभले तो देश नेस्तनाबूद हो जाएगा। एक तरफ पूंजी और तकनीक का लालच विद्रोह से रोक रहा है तो दूसरी तरफ भूखमरी और बेरोजगारी देख आत्मा चित्कार कर रही है। विकासशील देश जब इस आकड़े पर नजर डालते हैं कि विश्व व्यापार साढ़े छह फीसदी की रफ्तार से हर साल बढ़ रहा है तो विकसित देश और विश्व व्यापार संगठन के चौसड़ से बाहर निकलने का इरादा त्याग देते हैं, लेकिन दूसरे ही क्षण जब यह पता चलता है कि इस विश्व व्यापार बढ़ोतरी से विकासशील देश हर साल ६० करोड़ डॉलर गवां रहे हैं तो तुरंत इन वैश्विक बंधनों को तोड़ पुरानी व्यवस्था में लौटने को आतुर हो जाते हैं।

यह जानकर अच्छा लगता है कि गत २५ वर्षों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में २० गुणा वृद्धि हुई है, लेकिन यह समझकर निराशा होती है कि इसमें से ८० फीसदी निवेश सीधे विकसित देशों में गए हैं। १९९७ में सबसे अधिक १५० अरब डॉलर का निवेश विकासशील देशों में हुआ तो जरूर, लेकिन इसका मुख्य मक विकासशील देशों की कंपनियों अधिग्रहण और विलय रहा। १५० अ डॉलर के निवेश में से ९६ अरब डॉ का उपयोग विकासशील देशों कंपनियों को खरीदने में किया गर दस साल के उदारीकरण और साल के डब्लूटीओ के काल विकसित देशों ने विकासशील दे का जमकर दोहन किया और ब में दी सिर्फ भूखमरी और बेरोजग अनंत दास्तां।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन आंकड़ा ही बताता है कि विश्व में करोड़ लोग पूरी तरह बेरोजगार और एक अरब लोग अर्द्धबेरोजगा इन बेरोजगारों की भीड़ में ९० फीस

लोग विकासशील देशों के हैं और लगभग आधे एशिया के। भारत के साथ-साथ इंडोनेशिया, थाइलैंड, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका और बांग्लादेश में बेरोजगारी बेलगाम बढ़ रही है। भारत ने एक दशक में दस लाख रोजगार के अवसर खोए तो अकेले इंडोनेशिया में १९९८ में ८० लाख लोग बेरोजगार हो गए। थाइलैंड व दक्षिण कोरिया में भी बेरोजगारी दोगुणी हो गई है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के आकड़े के अनुसार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एक जगह से दूसरी जगह पलायन से भारत, श्रीलंका, बांग्लादेश और पाकिस्तान के लगभग १५ लाख मजदूरों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा, क्योंकि उदारीकरण के दुष्प्रभाव के कारण फैक्ट्रियां बंद होती चली गईं, व्यापार सिमटते चले गए।

बेरोजगारी पहले से ही एशियाई देशों के लिए अभिशाप थी, विकसित देशों ने इसे कोढ़ में खाज बना दिया है। पहले यह दिवास्वप्न दिखाया गया कि उदारीकरण अपनाने और विश्व व्यापार संगठन के दायरे में आने से विकासशील देश समृद्धि की राह पर चल पड़ेंगे चारों तरफ फैक्ट्रियां ही फैक्ट्रियां होगीं, अरबों दिवस के रोजगार के अवसर बनेंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियां लोगों का जीवन स्तर सुधार कर रख देगीं और विकसित एवं विकासशील देशों के बीच की लंबी खाई भी पट जाएगी, पर हुआ ठीक इसके उल्टा। डब्लूटीओ के दायरे में आकर विकासशील देशों ने खुद को विकसित देशों का निवाला बना डाला। गैट समझौते ने विश्व व्यापार तो बढ़ाया जरूर लेकिन शेर का हिस्सा बड़े और विकसित देशों ने गड़प लिया। डब्लूटीओ के आकलन के अनुसार २००१ के अंत तक पूरे विश्व की आय

रोजगार कार्यालय के आँसू

देश में संभवत: सरकार ही एक अकेली ऐसी संस्था है जो सबसे ज्यादा संख्या में रोजगार उपलब्ध कराती है। परंतु पिछले १० सालों में देश के रोजगार कार्यालयों द्वारा रोजगार प्रदान करने की सेवा में भारी कमी आयी है।

विचार किया जाए तो १९९० में, २२ रोजगार कार्यालयों ने दिल्ली में १.८१ लाख उम्मीदवारों में से २४,२०६ लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाया था। इनमें से तीन कार्यालय अब बंद है। इन कार्यालयों के द्वारा नौकरियाँ उपलब्ध करवाने की संख्या में भारी कमी आयी है। पिछले साल, सरकारी नौकरी के लिए उम्मीदवारों की संख्या घट कर १.६७ लाख रह गयी। अगर ध्यान दिया जाए तो केवल १२९ लोगों को ही रोजगार प्राप्ति हो पायी जबकि यह संख्या १९ रोजगार कार्यालय में काम कर रहे, ३१० कर्मचारियों से भी कम है। सरकारी रोजगार कार्यालयों की स्थापना १९५९ में संसद के एक नियम के अंतर्गत की गयी थी। परंतु अब चालीस सालों बाद, प्रश्न यह उठता है कि अब कार्यालयों से जनता को किस हद तक सेवाओं की प्राप्ति हो सकी है।

श्रम आयुक्त नरेन्द्र कुमार कार्यालयों को आधुनिक बनाने की सलाह देते हुए कहते हैं, 'एक राष्ट्रीय रोजगार कार्यालय वेबसाइट बनाया जा सकता है।' एक सरकारी रोजगार कार्यालय के कर्मचारी के अनुसार अप्रभावकारी कार्यालयों को बंद नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार "इनकी जरूरत है, क्योंकि सरकार को अपनी निजी जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी होती है। अगर आप ध्यान देंगे तो पाएंगे कि कुछ पर पिछड़ी जाति के लोगों तथा विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षित की जाती है। दिल्ली के पूर्व मुख्य सचिव ओमेश सैगल का मानना है कि सरकारी रोजगार कार्यालयों को निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे, नौकरी दिलवाने वाले ऐजेंसियों के साथ जोड़ना चाहिए। उदाहरण के लिए, निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे, इन एजेंसियों को किसी संस्था में रिक्त स्थान की पूर्ति करने पर उस संस्था तथा उम्मीदवार से एक महीने का वेतन अपनी सेवाएँ प्रदान करने के बदले प्राप्त होता है।

दिल्ली सबओरडिनेट सर्विस सेलेक्शन बोर्ड की स्थापना से भी रोजगार कार्यालय के पास आने वाली रिक्त स्थानों की सूचना आने में कमी आयी है। क्योंकि अब तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के रिक्त स्थानों व पदों के लिए सरकारी निगमों में विज्ञापन देकर उम्मीदवारों का चयन कर लिया जाता है।

"फिर २२ अगस्त, १९९९ को सुप्रीम कोर्ट ने नियोक्ताओं को आदेश दिया कि वे रिक्त स्थानों की घोषणा सूचना-पट पर या रेडियो और दूरदर्शन की जगह अखबारों द्वारा करें।"

नए पदों की रचना पर रोक और कई स्थानों को रिक्त रखने के केंद्र के निर्णय की वजह से सरकारी सेवाओं में पद प्राप्ति की समस्या और कठिन हो गयी है।

एक बेरोजगार स्नातक की नजर में जिसने अपना नाम रोजगार कार्यालय में १९९८ में पंजीकृत करवाया था, रोजगार कार्यालय सिर्फ संतोष के लिए है कि उसने सरकारी नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र दिया हुआ है। एक दूसरे स्नातक युवक का अनुभव है उसने १९८८ में रोजगार कार्यालय (विवेक विहार) में नाम दर्ज करवाया तथा हिन्दी-अंग्रेजी टाईपिंग टेस्ट पास किया। परंतु आजतक कोई कॉललैटर उसे प्राप्त नहीं हुआ हारकर उसने अपना दुबारा नवीकरण वर्ष २००० में नहीं करवाया। इनके अनुसार इन कार्यालय में पैसे ले-देकर कॉल लैटर भेजी जाती है।

कार्यालयों के अधिकारियों का कहना है कि ये समस्याएँ काफी गहरी है क्योंकि उस व्यक्ति को वरीयता दी जाती है जिसने १९९१ में अपना नाम पंजीकृत करवाया था ताकि उसे जिसने हाल ही में पंजीकरण करवाया है।

एक पंजीकृत व्यक्ति हर तीन साल के नवीनीकरण करवा सकता है। इस वजह से केवल दिल्ली के रोजगार कार्यालय में १० लाख की संख्या में लोग पंजीकृत हैं और सरकारी नौकरी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

Scanned with OKEN Scanner

संगठित और असंगठित क्षेत्रों में रोजगार (लाख में)

उद्योग	1993–94					1999–2000				
	कुल रोजगार	संगठित क्षेत्र में रोजगार			असंगठित क्षेत्र में रोजगार	कुल रोजगार	संगठित क्षेत्र में रोजगार			असंगठित क्षेत्र में रोजगार
		सार्वजनिक	निजी	कुल			सार्वजनिक	निजी	कुल	
कृषि	2424.6	05.4	08.8	1.42	2410.4	2375.6	05.1	09.0	14.1	2361.5
खनन	27.0	10.1	01.0	1.11	15.9	22.7	09.2	00.8	10.0	12.7
निर्माण	425.0	17.8	46.3	6.41	360.9	480.1	15.3	50.8	66.1	414.0
बिजली, गैस व जलापूर्ति	13.5	09.4	00.4	0.98	03.7	12.8	09.5	00.4	09.9	02.9
भवन निर्माण	116.8	11.7	00.5	1.22	104.6	176.2	10.9	00.6	11.4	164.8
व्यापार	277.8	01.6	03.0	0.46	273.2	373.2	01.6	03.3	04.9	368.3
परिवहन भंडारण व संचार	103.3	30.0	00.6	31.4	71.9	146.9	30.8	00.7	31.5	115.4
वित्तीए सेवाएं समाज व अन्य सेवाए	351.3	94.8	15.8	11.06	240.7	332.0	97.7	17.2	114.9	217.1
कुल रोजगार	3744.5	194.4	73.9	27.37	3470.0	3970.0	193.1	86.7	279.6	3690.4

स्रोत : श्रम मंत्रालय

दो सौ अरब से पांच सौ अरब डालर के बीच तो होगी लेकिन इसमें सत्तर फीसदी आय दक्षिण के औद्योगिक राष्ट्रों के पास पहुंच जाएगी, सिर्फ ३० फीसदी आय ही विकासशील देशों के पास जाएगी। सीधा सा अर्थ है कि गैट समझौते के कारण जो विश्व व्यापार में बढ़ोतरी हुई उसका फायदा विकसित देश उठा रहे हैं और नुकसान विकासशील देश। डब्लूटीओ के आंकड़े के अनुसार अफ्रीकी देशों को गैट के कारण एक अरब बीस करोड़ डालर प्रति वर्ष का नुकसान उठा रहे है। और एशियाई देशों को ६० करोड़ डॉलर का। साधनों के इस असमान वितरण पर टिप्पणी करते हुए इंडोनेशिया के मैक्रीन डिबोसोनो ने पिछले जी–७७ के बैठक में कहा था कि इस सफल अर्थव्यवस्था का नुकसान सिर्फ विकासशील देशों को उठाना पड़ रहा है। इनके हिस्से जीडीपी का सिर्फ एक फीसदी आ रहा है।

डब्लूटीओ की वार्षिक रिपोर्ट में भी यह कहा गया है कि सभी देशों को वैश्वीकरण का फायदा बराबर नहीं मिल रहा है। लैटिन अमेरिकी देशों में वैश्वीकरण का कुप्रभाव स्पष्ट नजर आ रहा है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अपने रिपोर्ट में कहा है कि प्रतिस्पर्धी अंतरराष्ट्रीय वैश्विक बाजार के उभरने और नई प्रौद्योगिकी के शामिल होने के कारण मजदूरों की उत्पादकता तो बढ़ी है, लेकिन अकुशल और अर्धकुशल मजदूरों की छंटनी भी काफी तेजी से हुई है।

अब यह धारणा भी पूरी तरह गलत साबित हो चुकी है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां रोजगार के बड़े–बड़े अवसर पैदा करेंगी। अंकटार्ड की रिपोर्ट के अनुसार बहुराष्ट्रीय कंपनियां भले ही

अधिग्रहण करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी घरेलू कंपनियों का विलय ही इस आधार पर कर रही हैं कि पुरानी कंपनी के श्रमिकों एवं कर्मचारियों का भार नहीं उठाएंगी। एक अनुमान के अनुसार अधिग्रहण और विलय के कारण विकासशील देशों में हर साल पचीस से चालीस हजार श्रमिकों को घर बैठा दिया जा रहा है। यह आंकड़ा किसी और का नहीं, बल्कि विश्व व्यापार संगठन का है।

८० फीसदी विदेशी निवेश की वाहक होती हैं, लेकिन रोजगार देने के मामले में इनका योगदान सिर्फ तीन फीसदी का है, बल्कि इनके आने और इनकी आक्रामक शैली के कारण बेराजगारी काफी तेजी से बढ़ रही है। खासकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अधिग्रहण एवं विलय अभियान के कारण बेरोजगारी काफी तेजी से बढ़ी है। पिछले पांच सालों में विकासशील देशों में आए कुल निवेश का पचास से सत्तर फीसदी निवेश का उपयोग घरेलू कंपनियों के अधिग्रहण एवं विलय में हुआ है जिसके कारण बेरोगजारी तेजी से बढ़ रही है। अधिग्रहण करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी घरेलू कंपनियों का विलय ही इस आधार पर कर रही हैं कि पुरानी कंपनी के श्रमिकों एवं कर्मचारियों का भार नहीं उठाएंगी। एक अनुमान के अनुसार अधिग्रहण और विलय के कारण विकासशील देशों में हर साल पचीस से चालीस हजार श्रमिकों को घर बैठा दिया जा रहा है। यह आंकड़ा किसी और का नहीं, बल्कि विश्व व्यापार संगठन का है। डब्लूटीओ की वार्षिक रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि खर्चे में कटौती और दक्षता में वृद्धि के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियां बेरोजगारी धड़ल्ले से बढ़ा रही हैं।

विकसित देशों ने पहले तो यह सब्जबाग दिखाया कि वैश्वीकरण उस वैश्विक गांव की कल्पना है जहां वस्तुएं, सेवाएं, पूंजी और मानव संसाधन की मुक्त आवाजाही जारी रहेगी। लेकिन जैसे–जैसे विकासशील देश इनके झांसे में आते गए वैसे–वैसे विकसित देश रंग बदलते गए। विकसित देश अपनी पूंजी, अपना उत्पादन, अपनी तकनीक और अपना मानव संसाधन जहां चाहे, जैसे चाहे उपयोग करते हैं। लेकिन विकासशील देशों के मामले में हमेशा रोड़ा अटकाया जाता है। खासकर उन क्षेत्रों में जहां विकासशील देश अपेक्षाकृत सस्ता उत्पादन करते हैं। विकसित देशों का मकसद साफ है कि वह उन क्षेत्रों में धड़ल्ले से प्रवेश करना चाहते हैं जहां विकासशील देशों की पहुंच नहीं है और उन क्षेत्रों पर प्रतिबंध लगा देना चाहते हैं जहां विकासशील देश अपेक्षाकृत मजबूत स्थिति में है। उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित देश तो पहले ही मजबूत हैं अब भारी सब्सिडी तथा संरक्षण देकर अपनी कृषि और अपने कुटीर उद्योग का भी विकासशील देशों की कृषि और कुटीर उद्योग पर वर्चस्व बनाना चाहते हैं। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने डब्लूटीओ मामले पर विकासशील देशों

Scanned with OKEN Scanner

> भारत में पिछले पांच साल में बेरोजगारी के अवसर में एक फीसदी से भी कम की वृद्धि हुई है। यह आंकड़ा किसी और का नहीं भारत सरकार का है। श्रममंत्री सत्यनारायण जटिया ने जो ताजा आंकड़े दिए हैं उसके अनुसार १९९३–९४ में ३७ करोड़ ४४ लाख कार्यदिवस का रोजगार उपलब्ध था जो १९९९–२००० में बढ़कर ३९ करोड़ ७० लाख हो गया।

की चिंता से संबंधित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में विकसित देशों पर यही आरोप लगाया।

विकासशील देशों में बेरोजगारी बढ़ाने और हाहाकार मचवाने में विकसित देशों की पूंजी एक अस्त्र के रूप में काम कर रही है। विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियां दीर्घकालिक पूंजी निवेश में विश्वास नहीं रखती। भारत में तो यह स्थिति और भी स्पष्ट है। पोर्टफोलियो निवेश के नाम पर सट्टे बाजी कर रही विदेशी कंपनियां बेरोजगारी बढ़ाने में अहम भूमिका निभा रही हैं। हमारे यहां चीन की तरह कोई व्यवस्था तो नहीं है कि समय से पहले पूंजी निकाल कर भागने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ कोई कार्रवाई की जा सके। चीन विदेशी निवेश करने वाली कंपनियों से उनके कुल निवेश का बीस से तीस फीसदी अपने केंद्रीय बैंक में जमा करा लेता है। यदि कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी करार तोड़ पूंजी निकाल कर ले जाना चाहती हैं तो चीन बैंक में जमा उनकी पूंजी जब्त कर लेता है। पर भारत में तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों की खुली छूट है, जब चाहे जहां निवेश करें और जब चाहे निकाल लें। बहुराष्ट्रीय कंपिनयों में यह एक परंपरा सी बन गई है कि वह अपनी इकाइयां एक जगह से उठाकर दूसरी जगह ले जाती हैं। जिसका सीधा असर यह होता है कि पहले स्थापित इकाइयों में काम कर रहे मजदूर एकदम से बेरोजगार हो जाते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की इस आदत ने एशियाई देशों की कमर तोड़ दी है।

बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपिनयों ने पहले तो सस्ते श्रम और सस्ते मानव संसाधन के कारण बैंकाक, थाईलैंड, मारीसस और भारत में औद्योगिक इकाइयां लगाई, लेकिन जैसे ही उन्हें चीन जैसा बड़ा बाजार मिला अपनी पूंजी लेकर उड़ गईं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की इस मनमानी का सबसे बुरा उदाहरण १९९७–९८ के एशियाई आर्थिक संकट के समय सामने आया। १९९६ तक एशियाई देशों में विदेशी पूंजी का प्रवाह सौ अरब डालर प्रति वर्ष था, लेकिन अचानक नवंबर १९९७ से अप्रैल १९९८ के बीच के आर्थिक संकट का सहारा लेकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने एशियाई बाजार से चार हजार अरब डालर निकाल लिया। जिसका असर यह हुआ कि एशियाई देशों में उस समय एक करोड़ लोग एकदम से बेरोजगार हो गए। यह कोई पहली घटना नहीं थी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने १९९४–९५ में मैक्सिको का संकट पैदा कर दस लाख लोगों को बेरोजगार कर दिया था। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। १९९४–९५ तक अमेरीका और यूरोप जैसे विकसित जिसे एशियन टाईगर के नाम से पुकारते थे, वही विकसित देश अब भारत को बीमार बकरी समझ कर जिबह कर रहे हैं।

विश्व व्यापार संगठन और उदारीकरण के झांसे में आकर अपनी समाजवादी व्यवस्था और केंद्रकृत अर्थव्यवस्था का ढांचा बिना सोचे–समझे ध्वस्त करने वाले दे अब पछता रहे हैं। भारत भी उन देशों में से है। १९९० के भयंकर आर्थि संकट की मजबूरी में भारत उदारीकरण अपना तो लिया लेकि बढ़ती बेरोगजारी और पिछड़ेपन व दूर करने की कोई दीर्घकालि अर्थनीति नहीं सोची। विश्व बैंक औ अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दो मंत्र ढांचागत समायोजन और सार्वजनिव खर्चों में कटौती को जपने की विवशत से भारत ने अपने सार्वजनिक उद्य के ढांचे को तहस–नहस कर डाला। सार्वजनिक उपक्रम या तो बंद किए जा रहे हैं या निजी कंपनियों के हाथों औने–पौने दाम पर बेचे जा रहे हैं जिससे भारी मात्रा में मजदूरों की छटनी हो रही है जिसके कारण बेरोजगारी बढ़ रही है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने ढांचागत समायोजन के नाम पर सार्वजनिक उपक्रम को बेचे जाने के फैसले को ही लैटिन अमेरिका और एशियाई देशों में बेरोजगारी बढ़ने का कारण बताया है।

भारत में पिछले पांच साल में बेरोजगारी के अवसर में एक फीसदी से भी कम की वृद्धि हुई है। यह आंकड़ा किसी और का नहीं भारत सरकार का है। श्रममंत्री सत्यनारायण

(शेष पृष्ठ १६ पर)

Scanned with OKEN Scanner

टॉस्क फोर्स की स्थापना जनवरी २१, १९९९ को योजना आयोग द्वारा प्रतिवर्ष एक करोड़ रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर अगले दस वर्षों में दस करोड़ रोजगार देने की सरकारी घोषणा के परिपेक्ष्य में की गयी थी।

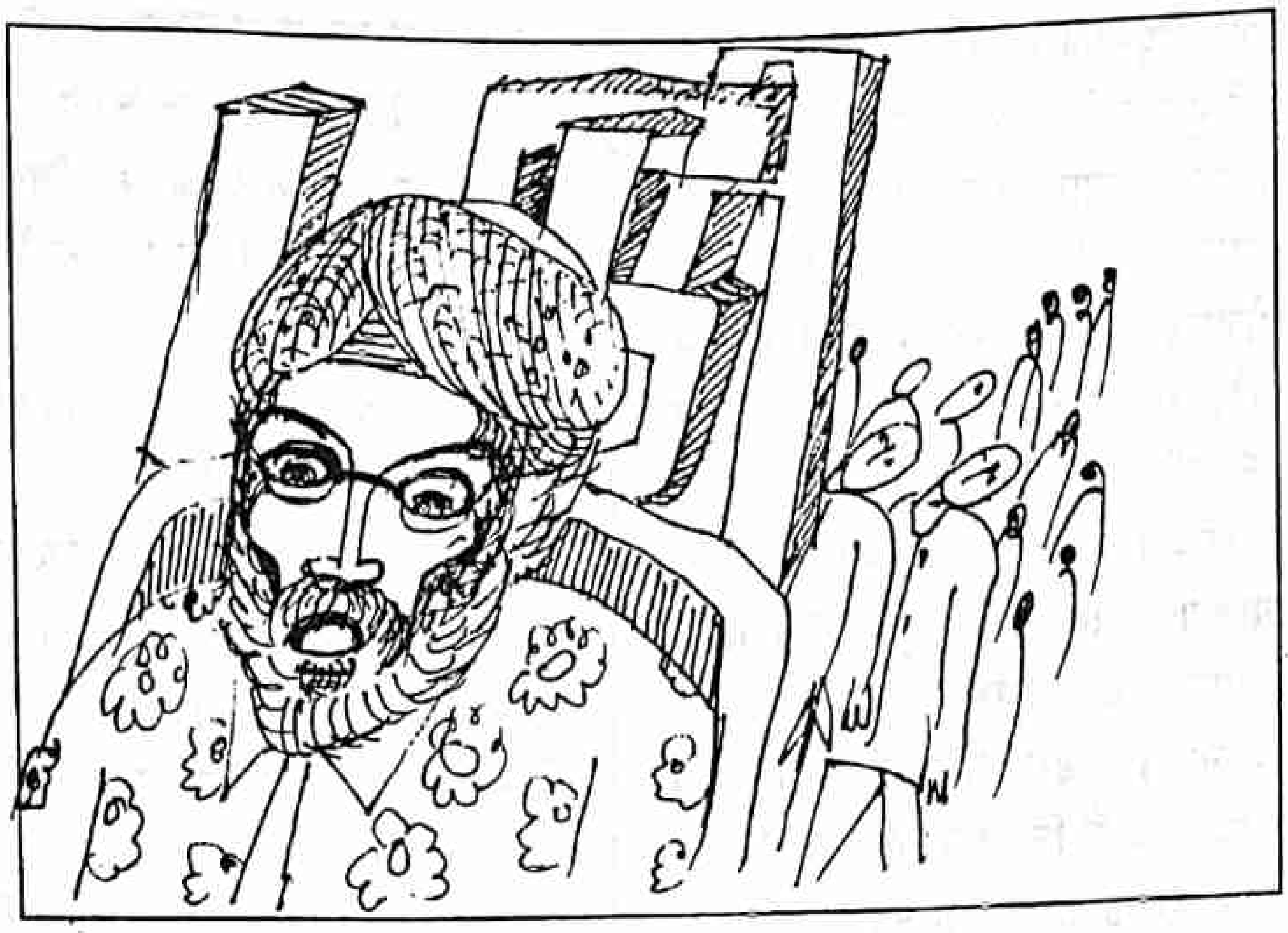

रोजगार के अवसर उलझाएगा टॉस्क फोर्स

■ *डॉ. महेश शर्मा*

श्री मोन्टेक सिंह अहलूवालिया के अध्यक्षता वाले 'रोजगार संभावनाओं के लिए टॉस्क फोर्स' ने अपनी रिपोर्ट १ जुलाई, २००१ को प्रस्तुत किया। इस रिपोर्ट ने इस कठिन मुद्दे को और उलझा दिया है। इस मुद्दे पर, संबंधित पक्षों में फैल रही घबराहट एवं निराशा को दूर करने के लिए गंभीरतापूर्वक और अत्यावश्क रूप से विचार करना होगा।

इस टॉस्क फोर्स की स्थापना जनवरी २१, १९९९ को योजना आयोग द्वारा प्रतिवर्ष एक करोड़ रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर अगले दस वर्षों में दस करोड़ रोजगार देने की सरकारी घोषणा के परिपेक्ष्य में की गयी थी। प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने १५ अगस्त १९९८ के लाल किले के प्राचीर से किए गए अपने पहले राष्ट्र संबोधन में इसकी घोषणा की थी (देखें *बॉक्स)* भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया गया था कि यह टास्क फोर्स अपनी अंतिम रिपोर्ट ३१ जुलाई, १९९९ तक प्रस्तुत कर देगी। इस रिपोर्ट में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि इस टॉस्क फोर्स की समय सीमा कितनी बार और क्यों बढ़ायी गयी।

रिपोर्ट में दर्ज है कि टॉस्क फोर्स की बैठक १९९९ में पाँच बार, २००० में दो बार और आखिरी बार २४ मई, २००१ को हुई जिसमें टॉस्क फोर्स अध्यक्ष को इस रिपोर्ट को योजना आयोग के उपाध्यक्ष को प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत किया गया।

शुरू में ही इस मुद्दे का वास्तविक सापेक्ष महत्व जानना आवश्यक है। "देश के सामने आ रही एक महत्वपूर्ण समस्या, कामकाजी व्यक्तियों में लगातार हो रही वृद्धि को उत्पादक रोजगार उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करना है", यह रिपोर्ट अपने शुरूआती वक्तव्यों में कहती है। इसमें आगे लिखा हुआ है कि 'यह व्यापक रूप से माना जाता है कि उदारीकरण के दौर में तेजी से बढ़ते हुये सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में रोजगार में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो रही है। यह डर है कि आंतरिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में, चाहे वे कितने भी अपरिहार्य क्यों न हों, एक ऐसा वातावरण बन रहा है जो निजी क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने में सहायक नहीं है। इसका असर संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में बहुत धीमी गति से हो रही बढ़ोत्तरी से महसूस किया जा सकता है जिससे बेरोजगारी दर में वृद्धि हो रही है और युवाओं में हताशा बढ़ रही है।'

यह सभी अर्थशास्त्री, योजनाकार और विकास के प्रचारक समान रूप से स्वीकार करते हैं कि रोजगार किसी भी

Scanned with OKEN Scanner

> "......बेरोजगारी समाप्त करना हमारे राष्ट्रीय कार्यसूची की एक महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा है। यह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है। रोजगार जनता की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का एक मात्र तरीका है। पूर्ण रोजगार के लिए योजनाएँ बनाना मुश्किल जरूर है असंभव नहीं। लेकिन मूल आवश्यकताएँ एवं सेवाएँ जनता के द्वारा ही उत्पादित की जाएगी। इसके लिए विज्ञान एवं तकनीक का उपयोग किया जाएगा।
>
> सरकार ने तय किया है कि अगले दस वर्षों में दस करोड़ लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि प्रतिवर्ष एक करोड़ लोगों को रोजगार की संभावनाएँ उपलब्ध होंगी। इसके लिए एक टॉस्क फोर्स की स्थापना की जाएगी जो अपनी रिपोर्ट जल्द ही प्रस्तुत कर देगी . . . ."
>
> **१५ अगस्त, १९९८ को**
> **माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी**
> **के स्वतंत्रता दिवस संबोधन से उधृत**

अन्य दयालुता या कल्याणकारी सहायता की तुलना में न्याय बाँटने के लिए सबसे प्रभावी औजार है। जनता की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए रोजगार की उपलब्धता से बेहतर तकनीक कोई और नहीं है। उत्पादन एवं उपभोग के बीच सबसे तर्कपूर्ण एवं सीधे सहसंबंध के लिए उपलब्ध सबसे अच्छी प्रक्रिया आम जनता को वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग के लिए प्रेरित करना है। इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि बड़ी मात्रा में ग्रास रूट स्तर पर उत्पादक, लाभपूर्ण तथा सतत स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना, अकेले या और सम्मिलित रूप से हर हाल में वेतन आधारित रोजगार और दूरस्थ रोजगार से बेहतर है और बेरोजगारी दूर करने का वास्तविक उपाय है। जो कुछ भी निचले स्तरों पर उत्पादित होगा उसे उत्पादन के ऊँचे स्तरों पर पहुँचाना स्थान, समर्थन और ऊर्जा के मानदंडों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक नहीं होगा।

यह सभी संबंधित लोग मानते हैं कि माँग में वृद्धि औद्योगिक मंदी का अर्थव्यवस्था की मंदी का उत्तर है। आधारभूत संरचना के क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश बढ़ाने के और अन्य उपायों के अतिरिक्त, अर्थव्यवस्था की मंदी से उबरने के लिए सबसे स्थायी एवं सतत उपाय, देश के मध्य एवं निम्न मध्य वर्ग तथा ग्रामीण जनता के खरीद क्षमता में वृद्धि करना है जिसके लिए उन्हें कृषि क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों में सतत स्वरोजगार के उपयुक्त अवसर उपलब्ध कराए जाएं।

इन सभी उपरोक्त बातों को मूल बनाते हुए भाजपा घोषणा पत्र (१९९८) और सहस्त्राब्दी शपथ पत्र (दिसम्बर १९९९) में एक घोषणा की गयी थी – "बेरोजगारी से मुक्ति १० वर्षों में १० करोड़ नौकरियाँ"।

राजग के शासन की कार्यसूची (१९९९) में भी इस पर जोर डाला गया था। इसमें लिखा है –

- हम सुधारों का पुर्नमूल्यांकन करेंगे और इसमें बेरोजगारी दूर कर प्राण फूँकेंगे।
- हम सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास की कोशिशों को मानवतावादी स्वरूप प्रदान करेंगे। जिसके साथ गरीबी का पूर्णतः उन्मूलन हमारा लक्ष्य होगा। इसके लिए 'बेरोजगारी हटाओ' हमारा नारा है।
- हम, यूनीकॉरपोरेट एवं स्व रोजगार क्षेत्रों में वित्तीय तकनीकी तथा सामाजिक सुरक्षा आवश्यकताओं का व्यापक अध्ययन कराएंगे; साथ ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के इस सबसे बड़े खंड, जिसमें रोजगार के अवसर बढ़ाने की बहुत बड़ी संभावनाएं है, के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए एक विकास बैंक की स्थापना की जाएगी। इसके अतिरिक्त, कारीगरों, लघुउद्योगों, ग्रामीण, खादी, हैण्डलूम, हस्तशिल्प और इसी तरह के अन्य क्षेत्रों के लिए वित्तीय सहयोग संस्थाओं के साथ-साथ, सेवा, तकनीक और मार्केटिंग सुविधाएं उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं की स्थापना की जाएगी। ये सभी तथा कृषि क्षेत्र रोजगार प्रदान करने की असीमित क्षमता है जिसका उपयोग अब तक नहीं हो पाया है।

प्रत्येक नागरिक के काम करने के अधिकार को मानते हुए इस नई सरकार का मुख्य दबाव बेरोजगारी खत्म करने पर होगा – 'बेरोजगारी हटाओ'। वर्तमान समय के रोजगार रहित विकास के स्थान पर हमारी सरकार रोजगार के साथ विकास देगी। हमारा नया निवेश तथा संस्थानिक दबाव कृषि, स्वरोजगार, यूनीकारपोरेटेड क्षेत्र, आधारभूत संरचना के विकास तथा गृह-निर्माण के क्षेत्र में होगा जो बड़ी मात्रा में सभी स्तरों पर रोजगार उपलब्ध कराने के वाहन के रूप में कार्य करेंगे।

पुनः भाजपा/राजग के इस अधिकारिक घोषणा तथा प्रतिबद्धता के परिपेक्ष्य में, टॉस्क फोर्स की रिपोर्ट या मोन्टेक रिपोर्ट, बेरोजगारी के संवेदनशील तथा भयप्रद समस्या के साथ केवल एक असभ्य मजाक है। इस मोन्टेक रिपोर्ट के मुख्य अनुशंसाओं तथा अभिमत पर ध्यान देने पर हमें विचलित करने वाले संकेत तथा निराशाजनक संदेश प्राप्त होता है।

Scanned with OKEN Scanner

...आसानी से प्रेक्षित किया जा सकता ...कि मोन्टेक रिपोर्ट राजग के 'शासन कार्यसूची' वर्णित विचारों एवं मूल ...ओं के ठीक उलटा है।

- जहाँ राजग प्रलेख जोरदार ढंग से कहता है 'वर्त्तमान के रोजगार रहित विकास के जगह हम रोजगार सहित विकास करेंगे' वहीं मोन्टेक रिपोर्ट के पहले ही अनुशंसा में है – '८.५% की आर्थिक वृद्धि दर से रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं होगी।'
- जहाँ राजग कार्यसूची में कारीगरों, लघु उद्योग, ग्रामीण, खादी, हस्तशिल्प, हैण्डलूम इत्यादि तथा कृषि क्षेत्र के विकास की बात की गयी है वहीं मोन्टेक रिपोर्ट के अनुसार "अगले दस वर्षों में रोजगार के कुल अवसरों के ७०% सेवा क्षेत्र में होंगे।"

मोन्टेक रिपोर्ट जोरदार ढंग से ...म्नलिखित अनुशंसाएं करती है –

- सकल घरेलू उत्पाद में प्रस्तावित वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए आयात शुल्कों में कमी की जाए।
- वर्त्तमान कब्जवारी (टेनान्सी) कानून में बदलाव कर एग्रो कंपनियों को जमीनों के खरीद, बिक्री तथा उपभोग की खुली छूट दी जाए।
- ग्रामीण जमीन शहरीकरण के लिए कानूनों में बदलाव लाया जाए।
- बड़ी औद्योगिक इकाईयों तथा बहुराष्ट्रीय निगमों को खाद्य प्रसंस्करण में सक्रिय भूमिका निभानी होगी।
- वर्त्तमान लघु उद्योग मंत्रालय तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय का नया नाम लघु तथा मध्यम प्रतिष्ठान मंत्रालय किया जाए जो नए विचारों को परिलक्षित करें।
- लघु उद्योग क्षेत्र को अनारक्षित किया जाए तथा प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी आमंत्रित की जाए।
- सस्ते तथा बढ़िया होटलों की स्थापना की जाए तथा विलास कर (लक्जरी टैक्स) एवं अन्य टैक्सों में छूट दी जाए।
- आधुनिक फुटकर बिक्री व्यवस्था स्थापित की जाए और इस क्षेत्र में भी विदेशी पूँजी निवेश को बढ़ावा दिया जाए।
- आधुनिक तथा बड़ी परिवहन कंपनियाँ बनायी जाएं।
- निर्माण क्षेत्र में बड़े निर्माण फर्मों के विरुद्ध के वर्त्तमान झुकाव को हटाया जाए।
- विशेष रोजगार योजनाएँ : इनके पुर्नमूल्यांकन को रोका जाए तथा इन योजनाओं पर किए जा रहे व्यय को वर्त्तमान स्तर पर ही रहने दिया जाए।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्य से केन्द्रीय सरकार अपने को पूर्णतः अलग करे।
- श्रम सुधार : सबसे महत्वपूर्ण बदलाव यह है कि छँटनी, तालाबंदी तथा रिट्रेन्शमेन्ट इत्यादि के लिए सरकार से पहले आज्ञा लेने की आवश्यकता खत्म की जाए। श्रम न्यायलय तथा अन्य न्यायाधिकरणों के अधिकारों को समाप्त किया जाए। छोटे समयावधि के अनुबंधों के आधार पर कार्य कराने को मान्यता दी जाए। अनुबंधित श्रम कानूनों में बदलाव लाया जाए।

सभी उपरोक्त अनुशंसाएं एक खास तरफ झुकाव लिए हुए हैं क्योंकि इस टॉस्क फोर्स में, किसान, कारीगर, युवाओं या समाज के कमजोर वर्गों के प्रतिनिधियों को स्थान नहीं दिया गया था। इससे भी बढ़कर यह कि इस टॉस्क फोर्स ने जनता से किसी भी तरह का सुझाव नहीं माँगा, न ही राज्य सरकारों, गैर सरकारी संस्थाओं या संबंधित पक्षों के विचार लिये।

रिपोर्ट में एक बहुत बड़ी कमी है कि इसमें तकनीक के अवदान पर ध्यान ही नहीं दिया गया है। सच्चाई यह है कि एक ही उत्पादन प्रक्रिया के लिए मौजूद कई तकनीकों की इसमें उपेक्षा की गयी है। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि ऐसे टॉस्क फोर्स के साथ कोई भी तकनीकी विशेषज्ञ नहीं था और इसमें केवल अर्थशास्त्री, नौकरशाह तथा व्यापारी ही थे, उत्पादन तंत्र तथा तकनीकी व्यवस्था पर बहुत विखंडित विचार रखते हैं। इस रिपोर्ट में सूचना तथा संप्रेषण तकनीक को भी महत्व नहीं दिया गया है जिसके द्वारा उत्पादन प्रक्रिया के तंत्र पर पर्याप्त जोर दिया जा सकता था।

हम इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर अब आगे कैसे कार्यवाही करे? इस रिपोर्ट का छिन्द्रान्वेषी परीक्षण तथा सुझावों की उपयुक्त समालोचना बहुत आवश्यक है। इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर एक सही प्रस्ताव, उपयुक्त रणनीति और ठोस कार्य प्रणाली बनाने की भी आवश्यकता है।

मैं इस बात की तरफ ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि हमारे यहाँ इस महत्वपूर्ण विषय और इससे संबंधित क्षेत्रों में अनुभव रखने वाले बहुत से विशेषज्ञ उपलब्ध हैं। श्री मोहन धारिया, नाना जी देशमुख, इला भट्ट, विजय महाजन, जया जेटली, के०आ० दाते, कांतिभाई श्राफ, अन्ना हजारे, भारतीय किसान संघ, राष्ट्रीय कारीगर पंचायत, अवार्ड तथा अन्य गैर सरकारी संस्थाएँ और अन्य कई संघों एवं संस्थाओं ने इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया है। मोन्टेक तथा इस टॉस्क फोर्स के अन्य लोग इस क्षेत्र विशेष के विशेषज्ञ नहीं है।

योजना आयोग को इस रिपोर्ट की समीक्षा करने तथा आवश्यक उपयुक्त रणनीति सुझाने के लिए एक उच्च स्तरीय दल की स्थापना करनी चाहिए। ■

Scanned with OKEN Scanner

रोजगार नीति कैसी हो?

■ डॉ० भरत झुनझुनवाला।

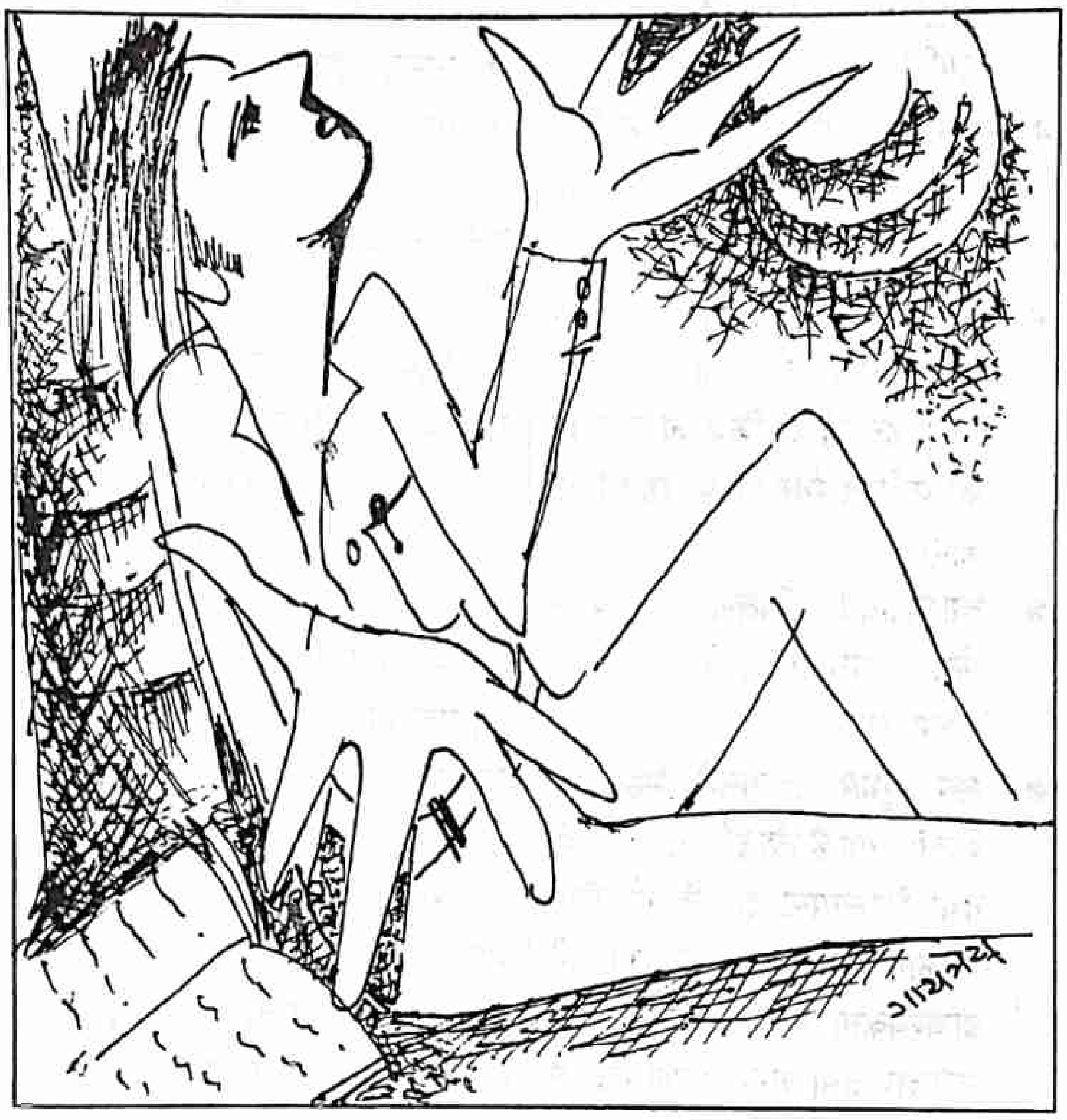

आम आदमी की हाल सुधारने का एकमा रास्ता यह है कि बा में श्रम की मांग इत बढ़ाई जाए कि उस आपूर्ति न हो सके। ही मजदूर का वेत बढ़ेगा। हमारे देश में से ही इतनी संख्या बेरोजगार लोग घर है कि मामूली सुधार कोई अंतर नहीं पड़ वाला है।

स्वतंत्रता दिवस पर दिए गए अपने उद्बोधन में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने आर्थिक सुधारों को गरीब परस्त बनाने की बात नहीं की है। साथ-साथ उन्होंने आर्थिक उदारीकरण का भी अनुमोदन किया है। वाजपेयी का मनोभाव स्वागत योग्य है परंतु उन्होंने जो रणनीति बनाई है वह निश्चय ही फेल होगी। गरीब और बाजार में सीधा अंतर्विरोध है। गरीब को राहत तब ही मिलेगी जब हम बाजार के वर्चस्व को सीमित करेंगे। बाजपेई इसके लिए तैयार नहीं है। यह उदारीकरण गरीब परस्त नहीं बनेगा।

गरीबी की समस्या बाजार में श्रम की मांग कम होने से उत्पन्न होती है। इतिहास के समय क्रम में पूँजी सस्ती होती जाती है। पूँजी से प्रतिस्पर्धा करने के लिए श्रम को भी अपना मूल्य कम करना पड़ता है। ट्रैक्टर सस्ता हो जाए तो हलवाहे को अपना मूल्य कम करना पड़ता है। बाजार में श्रम की मांग उत्पन्न हो भी जाए तो भी वेतन न्यून रहते है, चूंकि हमारी जनसंख्या अधिक है। हीरे तराशने, गलीचे बुनने एवं पत्थर की खदान में श्रम की मांग बाजार ने उ बढ़ी है। परंतु श्रमिक का वेतन न्यू रहता है। इसी से इस बात का खु होता है कि गरीबी रेखा के नीचे वाले लोगों की संख्या में कमी अ फिर भी गरीब अधीर हो रहे हैं। वेतन वाले रोजगारों की संख्या में होने से यह परिणाम सामने आय आम आदमी की हालत सुधारने एकमात्र रास्ता यह है कि बाजा श्रम की मांग इतनी बढ़ाई जाए उसकी आपूर्ति न हो सके। तब मजदूर का वेतन बढ़ेगा। हमारे दे पूर्व से ही इतनी संख्या में बेरो लोग घर बैठे है कि मामूली सुधा कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है। व में श्रमिक को एक का १५० मिलता है चूंकि वहाँ केले तथा अ की खेती में भारी मात्रा में श्रम की होती है। उन्हें तमिलनाडू से श्र आयात करने पड़ते हैं। बिहार में श्रमिक को मात्र ५० रुपए मिलते

Scanned with OKEN Scanner

दो चार नीतियों को बदलने मात्र से देश के आम आदमी को राहत मिल सकती है। वे अभी भी उसी पुराने ढर्रे पर चल रहे है जो पिछले पचास सालों में फेल हुआ है। आपने अपने उद्‌बोधन में कहा कि साक्षरता बढ़ाई जाएगी। बड़ी अच्छी बात है। परंतु यदि टीचर की मांग नहीं तो साक्षरता क्या काम आएगी? आपने कहा कि खादी कमीशन तथा स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ऋण बाँटे जाएँगे। परंतु यदि हाथ से बना कागज महंगा पड़ता हो तो ऋण किस काम का?

कि गेहूँ धान की खेती होती है और संख्या अधिक होने से वेतन न्यून रहते हैं। जब तक केरल की भारी में श्रम की मांग उत्पन्न नहीं होगी तक आम आदमी को राहत नहीं मिलेगी।

नई तकनीकें तथा बाजार देश को विरोधी दिशा में खींचे ले जाते हार्वेस्टर कम्बाइन के इजाद होने से मिकों को कटाई के समय मिलने ली विशेष आय समाप्त हो चली है। म की मांग में आ रही इस कमी की पाई हीरे तथा गलीचे उद्योगों से हो है। इस परिस्थिति को बदलने के ए हमें कम्बाइन सरीखी तकनीकों त्यागना होगा। तब ही श्रम की मांग गी और आम आदमी को आराम लेगा।

कम्बाइन की तरह श्रम की मांग र अनेक प्रकार से प्रहार हो रहे है। न की सफाई मिनी राइस मिल में ने लगी है। कागज पहले हाथ से नाया जाता था अब लगभग पूर्ण रूप मशीनों द्वारा बनाया जाता है। साबुन हले छोटे कुटीर उद्योगों में बनता था ब हिंदुस्तान लीवर के कुछ हजार जदूर पूरे देश की आवश्यकता की र्ति कर देते हैं। तेल धानी के स्थान र एक्सपेलर चल रहे हैं। ट्रैक्टर ने य और बैल और उनके रखने वालों का सफाया कर दिया है। गुड़ के स्थान र बड़ी मिलों में चीनी का उत्पादन हो रहा है। कपड़े की बुनाई हथकरघों में बंद सी हो गई है। मिल में ही उत्पादन होता है। इक्का तांगा के स्थान पर ऑटो रिक्शा चलने लगे हैं। इन तमाम तकनीकी सुधारों के चलते श्रम की मांग बढ़ नहीं सकी है और इसलिए आम आदमी अपनी पुरानी जगह ही खड़ा हुआ है। चारों तरफ समृद्धि के बावजूद उसके जीवन में सुधार नहीं आया है।

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि हम चावल, कागज, साबुन, तेल, ट्रैक्टर, चीनी, ऑटो रिक्शा तथा कपड़े की आधुनिक तौर तरीकों को बंद कर दें और पिछड़े उत्पादन को ही अपनाए रखें। यदि ऑटो रिक्शा से दस मिनट में कचहरी पहुँचा जा सकता है तो एक घंटा तांगे में व्यर्थ क्यों किए जाएँ।

समस्या इन दोनों परस्पर विरोधी दबाव में संतुलन बनाने की है। एक तरफ नई तकनीकों का लाभ भी हमें मिल जाए और दूसरी तरफ श्रम की मांग भी बनी रहे ऐसी युक्ति निकालनी है। इसका उपाय यह है कि तमाम तकनीकों का अध्ययन किया जाए और उनमें से रोजगार बढ़ाने का जो श्रेष्ठतम साधन हो उन्हें अपनाया जाए। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। मान लीजिए, कम्बाइन की तुलना में मजदूरों से गेहूँ की कटाई कराने में १०० रुपए प्रति टन की खर्च अधिक पड़ती है। देश के ७.५ करोड़ टन उत्पादन की कटाई में ७५० करोड़ का नुकसान होगा। श्रमिकों से कटाई धीरे होगी इसलिए फसल का नुकसान भी अधिक होगा। मान लीजिए १०० करोड़ का नुकसान इस प्रकार से होता है। यदि कम्बाइन पर प्रतिबंध लगा दिया जाए तो देश को ८५० करोड़ रुपए का नुकसान होगा। दूसरी तरफ यदि एक दिन में एक श्रमिक ५० किलो गेहूँ की कटाई दँवाई कर पाता है तो ७.५ करोड़ टन गेहूँ में १५० करोड़ दिन की श्रम की मांग निकलेगी। एक दिन के श्रम की मांग का देश को लगभग ६ रुपए का नुकसान होगा।

इसी तरह राइस मिल, कागज, साबुन आदि तमाम उद्योगों का अध्ययन किया जा सकता है। जिन प्रतिबंधों से देश को न्यूनतम नुकसान हो उन्हें लगा देने से श्रम की वांछित मांग उत्पन्न की जा सकती है। मान लीजिए राइस मिल में एक दिन का श्रम उत्पन्न करने में १२ रुपए, कागज में २ रुपए, साबुन में ८ रुपए का खर्च आता है तो बड़े कागज उद्योग बंद कर देने चाहिए। देश की जनता को कागज महंगा मिलेगा और पूँजीपति को लाभ से वंचित होना पड़ेगा परंतु श्रम की मांग बढ़ेगी और आम आदमी का वेतन बढ़ जाएगा। न सरकार को टैक्स लगाना होगा न ही वेलफेयर माफिया का पेट भरना होगा।

वाजपेयी को यह बात समझ में नहीं आ रही है कि दो चार नीतियों को बदलने मात्र से देश के आम आदमी को राहत मिल सकती है। वे अभी भी उसी पुराने ढर्रे पर चल रहे है जो पिछले पचास सालों में फेल हुआ है। आपने अपने उद्‌बोधन में कहा कि साक्षरता बढ़ाई जाएगी। बड़ी अच्छी बात है। परंतु यदि टीचर की मांग नहीं तो

Scanned with OKEN Scanner

साक्षरता क्या काम आएगी? आपने कहा कि खादी कमीशन तथा स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ऋण बाँटे जाएँगे। परंतु यदि हाथ से बना कागज महंगा पड़ता हो तो ऋण किस काम का? आपने कहा कि कृषि में निवेश बढ़ाया जाएगा। परंतु यदि निवेश कम्बाइन तथा ट्रैक्टर में हो तो उससे आम आदमी की समस्या गहराएगी। आपने कहा कि गर्भवती महिलाओं को सस्ता अनाज दिया जाएगा। परंतु उनके घरवाले उतना ही अनाज बाजार से कम खरीदेंगे और गेहूँ के दाम गिरेंगे। बाजपेई द्वारा बतलाई गई ये सभी नीतियाँ फेल होंगी।

फिर भी हर्ष का विषय है कि सड़क, दूरसंचार तथा कानून व्यवस्था के सुधार में बाजपेई ने रूचि दिखाई है। यह भी प्रसन्नता की विषय है कि शिक्षा तथा स्वास्थ्य माफिया को पोषित करने का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। परंतु अभी भी उनकी सोच सरकारी नौकरशाहों की है। उन्हें टैक्स लगाकर सरकारी नौकरशाही के माध्यम से गरीबी हटाओ की फर्जी योजनाएँ ही पसंद आ रही है।

साक्षरता, ऋण, सस्ता अनाज आदि को छोड़ कर उन्हें उन नीतियों पर ध्यान देना होगा जिनसे श्रम की मांग बढ़ सकती है। तब आम आदमी शिक्षा, ऋण तथा अनाज स्वयं बाजार से खरीद लेगा. . . . आवश्यकताओं को लोग स्वयं पूरा कर लेंगे।

वाजपेयी को एक कदम और आगे बढ़ाना होगा। साक्षरता, ऋण, सस्ता अनाज आदि को छोड़ कर उन्हें उन नीतियों पर ध्यान देना होगा जिनसे श्रम की मांग बढ़ सकती है। तब आम आदमी शिक्षा, ऋण तथा अनाज स्वयं बाजार से खरीद लेगा। देश की जिस बाजू पर वाजपेयी को भरोसा है उसे काम मिल जाए तो इन सब आवश्यकताओं को लोग स्वयं पूरा कर लेंगे। आम आदमी के बाजू को काट गिराने और उसे ऋण और सस्ता अनाज देने से आम आदमी की समस्या दूर नहीं होगी। देश को रोजगार नीति की जरूरत है न कि गरीबी उन्मूलन के नए सरकारी विभागों की।

(पृष्ठ १० का शेष....)

अभी और छिनेंगे ....

जटिया ने जो ताजा आंकड़े दिए हैं उसके अनुसार १९९३–९४ में ३७ करोड़ ४४ लाख कार्यदिवस का रोजगार उपलब्ध था जो १९९९–२००० में बढ़कर ३९ करोड़ ७० लाख हो गया। यानी रोजगार के अवसर में सिर्फ ०.९८ फीसदी की बढ़ोतरी हुई है, जबकि बेरोजगारी की दर १.९० फीसदी से बढ़कर २.२३ फीसदी हो गई है। यही नहीं भारत के सामने सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह पैदा हो गया है कि बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में रोजगार के अवसर कैसे पैदा किए जाए। सरकार तो सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन और वित्तीय संस्थाओं में सुधार के आधार पर रोगजार के अवसर बढ़ने की संभावना व्यक्त कर रही है, लेकिन रोजगार पैदा करने वाले महत्वपूर्ण क्षेत्र, विनिर्माण, कृषि, खनन, सेवा और व्यापार क्षेत्रों के लगातार सिमटने से स्थिति और बिगड़ने की आशंका पैदा हो गई है। अभी हाल ही में कनफेडेरशन आफ इंडियन इंडस्ट्री (सीआईआई) ने लघु और अत्यंत छोटी औद्योगिक इकाइयों के बीच सर्वे कराया था। सर्वे में भाग लेने वाली लगभग पचास फीसदी से अधिक औद्योगिक इकाइयों का मानना है कि अगले छह महीने में उनकी इकाइयों से रोजगार के अवसर और घटेंगे।

अब हर भारतीय इस चिंता में जी रहा है कि अगर बेरोजगारी की भयावह स्थिति बनी रही तो उसका क्या होगा। आज भी पैंतीस करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे से जी रहे हैं। यह संख्या १९५० की कुल जनसंख्या के बराबर है। भारत की जनसंख्या हर साल डेढ़ करोड़ बढ़ जा रही है। इसका अर्थ साफ है कि भारत को हर वर्ष एक लाख पची हजार नए स्कूल चाहिए, तीन ला ७३ नए शिक्षक चाहिए, २५ लाख न घर चाहिए और ४० लाख न रोजगार के अवसर चाहिए, अग विकास की यही दर रही तो भार किसी भी स्थिति में लक्ष्य नहीं प्रा कर सकता है। एक तरफ भार आर्थिक सुधार का नया दौर शु करना चाहता है। आठ से द फीसदी जीडीपी का लक्ष्य निर्धारि करना चाहता है। दूसरी तरफ इत बेरोजगारी और गरीबी ढो रहा है जब तक कि भारत में प्रति व्यक्ति आय पांच सौ डालर प्रति माह तव नहीं पहुंच जाता तब तक भार गरीबी दूर नहीं कर सकता। औ जब तक हर साल एक करोड़ रोजगार के नए अवसर नहीं सृजि किए जाते तब तक प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी की बात बेमानी है। ■

Scanned with OKEN Scanner

आर्थिक मंदी और बेरोजगारी

■ मुकुंद कुमार

१९३० में अमेरिका जब मंदी से गुजर रहा था तब आई०एम०एफ० और विश्व बैंक जैसे संगठनों के निर्माण के लिए उसने कई असफल सम्मेलन किए। इस मंदी से

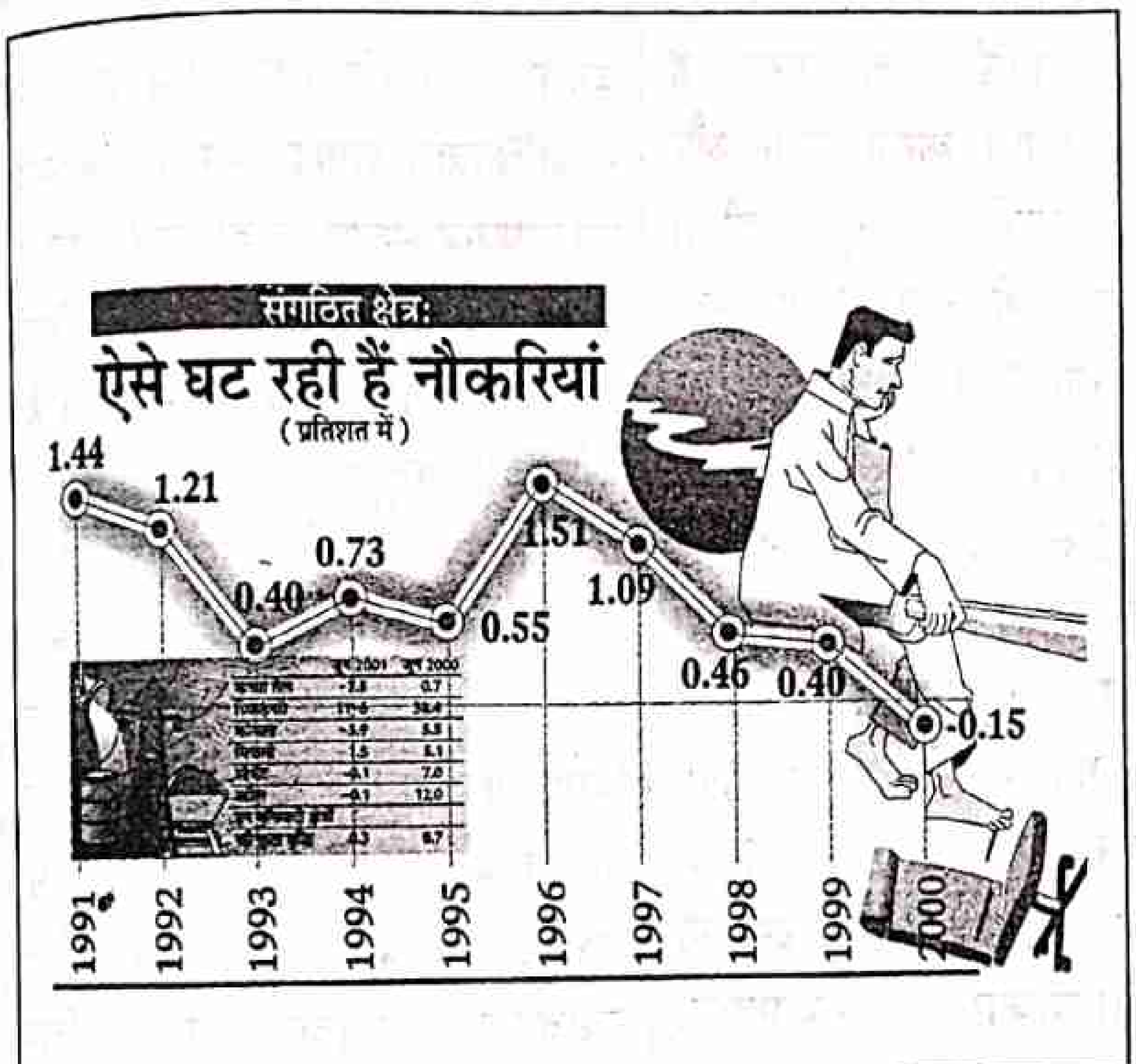

मंदी के माहौल में विश्व पैमाने पर भारत की दशा सबसे खराब बताई जा रही है। साख निर्धारण करने वाली विश्व की दो एजेंसियों ने भारत के प्रति अपने नजरिए में भी बदलाव ला दिया है, इससे नेतृत्व तो बेचैन है ही बाजार भी सहमा हुआ है।

अमेरिका को लगभग ३०० अरब डॉलर की हानि हुई थी। अमेरिकी राष्ट्रपति के आर्थिक सलाहकार परिषद् के उपाध्यक्ष लियो०एच० कोसरलिंग ने तत्कालिन अमेरिकी राष्ट्रीय एवं अमेरिकी कांग्रेस को चेतावनी दी थी कि अगर इस मंदी से जल्दी नहीं निपटा गया तो लगभग ८०० अरब डॉलर की हानि उठानी पड़ सकती है। इस मंदी से निपटने के लिए अमेरिका ने 'मार्शल योजना' की शुरूआत की और आई०एम०एफ० और विश्व बैंक के निर्माण में दिलचस्पी दिखाई और ये संगठन अस्तित्व में आए।

यह संगठन कमजोर अर्थतंत्र वाले देशों की प्रगति के लिए नहीं था बल्कि अमेरिका की मंदी दूर करने का एक जरिया था। आज यह दोनों संगठन अपनी गलत नीतियों और शर्तों के सिद्धांत की बुनियादी अवधारणा के कारण दुनिया में छायी आर्थिक मंदी के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार है। विश्वव्यापी मंदी की काली छाया भारतीय उद्योग जगत पर पड़ चुकी है। उत्पादन में कमी के कारण दिन प्रति दिन बेरोजगारी बढ़ रही है। इसके लिए मुख्य रूप से कौन जिम्मेदार है – अर्थव्यवस्था का उदारीकरण, बाजारीकरण या सरकार की गलत आर्थिक नीति? अर्थव्यवस्था के इस बदले हुए परिदृश्य के सही रास्ते पर लाने की कोशिश को लगता है कि ग्रहण लग गया है। इसे मंदी का ग्रहण कहा जा सकता है।

भारतीय बाजार में छायी हुई मंदी का ग्राफ बढ़ रहा है। यह मंदी सिर्फ भारत में ही नहीं है बल्कि इसका असर विश्वव्यापी है। इस मंदी का असर जापान और अमेरिका जैसी आर्थिक महाशक्तियों पर भी व्यापक रूप से हुआ है। भारत में यह मंदी ऐसे समय में आयी है जब राजनीतिक नेतृत्व और औद्योगिक जगत ९० के दशक में शुरू हुए आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के दूसरे चरण में प्रवेश कर रही है। अर्थव्यवस्था के सभी संकेत नकारात्मक दिशा इंगित कर रहे हैं। सकल घरेलू उत्पाद दर (जी.डी.पी.) औद्योगिक उत्पादन, निर्यात, कर वसूली, खुदरा बिक्री नकारात्मक संकेत के रूप में सामने खड़े है।

मंदी के माहौल में विश्व पैमाने पर भारत की दशा सबसे खराब बताई जा रही है। साख निर्धारण करने वाली विश्व की दो एजेंसियों ने भारत के प्रति अपने नजरिए में भी बदलाव ला दिया है, इससे नेतृत्व तो बेचैन है ही बाजार भी सहमा हुआ है। देश में बेरोजगारी का भयानक दौर चल रहा है। मंदी से निपटने के लिए देश के छोटे-बड़े सभी उद्योगों में कार्यबल घट रहा है। सभी छोटे-बड़े कंपनियों में लुभावने वायदे के साथ कर्मचारियों की छँटनी

Scanned with OKEN Scanner

का कार्य किया जा रहा है। श्रम मंत्रालय के एक अनुमान में यह बताया गया है कि संगठित क्षेत्र यानि बड़े उद्योगों में सन् २००० में नौकरियों में ०.५ फीसदी तक की कमी आई है यानि लगभग ४५००० नौकरियाँ कम हुई है। जब देश में कामगारों की आबादी बढ़ रही हो और नौकरियों में कमी हो रही हो, तो ऐसे लक्षण यह दर्शाते हैं कि कारपोरेट सेक्टर को निकट भविष्य में अपनी संभावनाएँ अच्छी नहीं दिखाई पड़ रही है।

नौकरियों का आलम यह है कि कुछ दिन पहले नौकरियों के विज्ञापन देने वाले अखबार १६ पृष्ठों के होते थे लेकिन अब ८ या ९ पृष्ठों के रह गए है। बेरोजगारी का दूसरा प्रमाण बड़े-बड़े प्रबंधन और इंजीनियरिंग संस्थानों में पहले से ही प्रतिभाशाली छात्रों को बुक कर लेने की परंपरा का समाप्त होना है। रोजगार के मामले में सबसे ज्यादा प्रभाव कैसे लोगों पर हुआ है जो बिना किसी खास अनुभव के कागजी आवेदन की नैया से बेरोजगारी की समुद्र पार करना चाहते हैं। नौकरियों की कमी का असर अर्थव्यवस्था के सभी मोर्चे पर जैसे औद्योगिक और कृषि उत्पादन में गिरावट, पूँजी बाजार की बदहवासी, सरकारी और गैर-सरकारी कंपनियों के निराशाजनक करोबार में स्पष्ट झलक रहा है। देश में बुनियादी सुविधाओं की कमी से मंदी लम्बी होती जा रही है और छँटनी ज्यादा कष्टदायक हो गया है। ऐसी स्थिति में बेरोजगारी के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा की समस्या भी सामने आ रही है। इस बेरोजगारी से निपटने के लिए सरकार ग्रामीण निवेश की योजना बना रही है, इससे यह जाहिर होता है कि सूचना प्रौद्योगिकी पर आत्मनिर्भरता की भूल का अहसास सरकार को शायद हो गया है। इससे यह भी अंदाज लगाया जा सकता है कि नामी-गिरामी संस्थानों से पढ़ कर निकले छात्रों को मिलने वाली नौकरियाँ अंततः खेती और उद्योग के संतुलन पर ही निर्भर करती है।

ऐसा लगता है कि सरकार और उसके सलाहकार गहरी नींद में सोये हैं। देश की आर्थिक स्थिति क्या है, अर्थव्यवस्था में छायी मंदी और बेरोजगारी का मूलकारण क्या है इसे कैसे दूर किया जा सकता है ये सब सरकार को सोचना होगा? प्रत्येक समस्या का समाधान खोजने से मिल सकता है उसके लिए प्रयास करना होगा और सही दिशा में कदम बढ़ाना होगा। एच०एल०एल० के अध्यक्ष एम०एस० बंगा के अनुसार ''सरकार को कृषि पर ध्यान देना चाहिए, कृषि क्षेत्र में ३ फीसदी वृद्धि से उद्योगों में २.६ फीसदी विकास खुद ही हो जाएगा और सकल घरेलू उत्पाद १.७ फीसदी हो जाएगा और यह ८ फीसदी वृद्धि दर के लक्ष्य के आसपास होगा। यह वृद्धि इतनी मजबूत होगी कि विश्व मंदी को आसानी से सह लेगी। सरकार को इससे मतलब रखना होगा केवल उदारीकरण का राग अलापने से कार्य नहीं चलेगा।

उदारीकरण के नाम पर आर्थिक पराधीनता के रास्ते चलना उचित नहीं, यदि केवल देश की कृषि व्यवस्था का सर्वांगीण विकास किया जाए, कृषि उत्पादनों के विभिन्न क्षेत्रों को उन्नत बनाया जाए और इसकी बिक्री के लिए बाजार सुनिश्चित किया जाए तो इससे बहुत बड़ा रोजगार सृजन हो सकता है। इसके लिए हिन्दुस्तान लीवर जैसी विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मशीनीकृत उद्यमों से बाजार की मुक्ति भी आवश्यक होगी। लाभकारी उद्यमों जैसे 'मॉडर्न फूड' को बेचने के पाप से सरकार को परहेज करना होगा। इस तरह के कदम सही दिशा में और सही मानसिकता से उठाए जाए जो देश के उपभोक्ताओं के लिए आपूर्ति सुनिश्चित करे विदेश के बाजार को अपनी गुणवत्ता से प्रभावित करे, सामाजिक जागरण हो तो रोजगार की बड़ी संभावनाएँ सामने आ सकती है। इसके लिए किसी भारी पूँजी और भारी मशीनीकरण की जरूरत नहीं।

दुनिया में छाई आर्थिक मंदी और बढ़ती बेरोजगारी के लिए सबसे बड़ा जिम्मेदार पूँजी शोषक बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं। जो मशीनीकरण से अधिकतम उत्पादन कर आर्थिक युद्ध का कोहराम मचाए हुई हैं। इनके उत्पादनों की खरीद जब घटने लगती है आर्थिक मंदी का वातावरण तैयार हो जाता है। बेरोजगारी बढ़ाने में बड़े उद्योग और मशीनीकरण की दौड़ जिम्मेदार है।

आज आर्थिक विकास के लिए पूंजी निवेश को बहुत अधिक महत्व दिया जा रहा है। बेरोजगारी के लिए पूँजी निवेश में आ रही कमी को भी रेखांकित किया जा रहा है। लेकिन स्वावलंबी अर्थव्यवस्था के लिए स्वावलम्बी पूँजी के होने की बात भी हमारे अर्थचिंतक मनीषी उठाते रहे हैं। यदि लघु उद्योगों के उन्नत उत्पादनों को प्रश्रय मिलता, ग्रामोद्योग का महत्व समझा जाता, बहुत से दैनिक उपयोग में आने वाले सामान हैं जिन पर बड़ी-बड़ी कंपनियाँ कब्जा जमाए बैठी हैं जिन्हें गाँव स्तर पर निर्मित किया जा सकता है और इनसे भारी रोजगार पैदा किया जा सकता है। यह सरकार का नीतिगत और दुर्व्यवस्था जनित दोष अधिक है कि देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। यदि हम अपनी पारंपरिक अर्थचिंतन से समाधान की तलाश करें तो हम अपनी समस्या दूर कर सकते हैं। ■

Scanned with OKEN Scanner

रोजगार संभावनाओं पर विश्व बैंक एवं मुद्राकोष की प्रेत छाया

■ विद्यानंद आचार्य

"आज तात्कालिक आवश्यकता इस बात की है कि मौजूदा अर्थशास्त्र में आमूलाग्र परिवर्तन लाया जाए। अर्थव्यवस्था लोगों के नियंत्रण में रहना चाहिए, लोगों की सेवा के लिए होना चाहिए।"

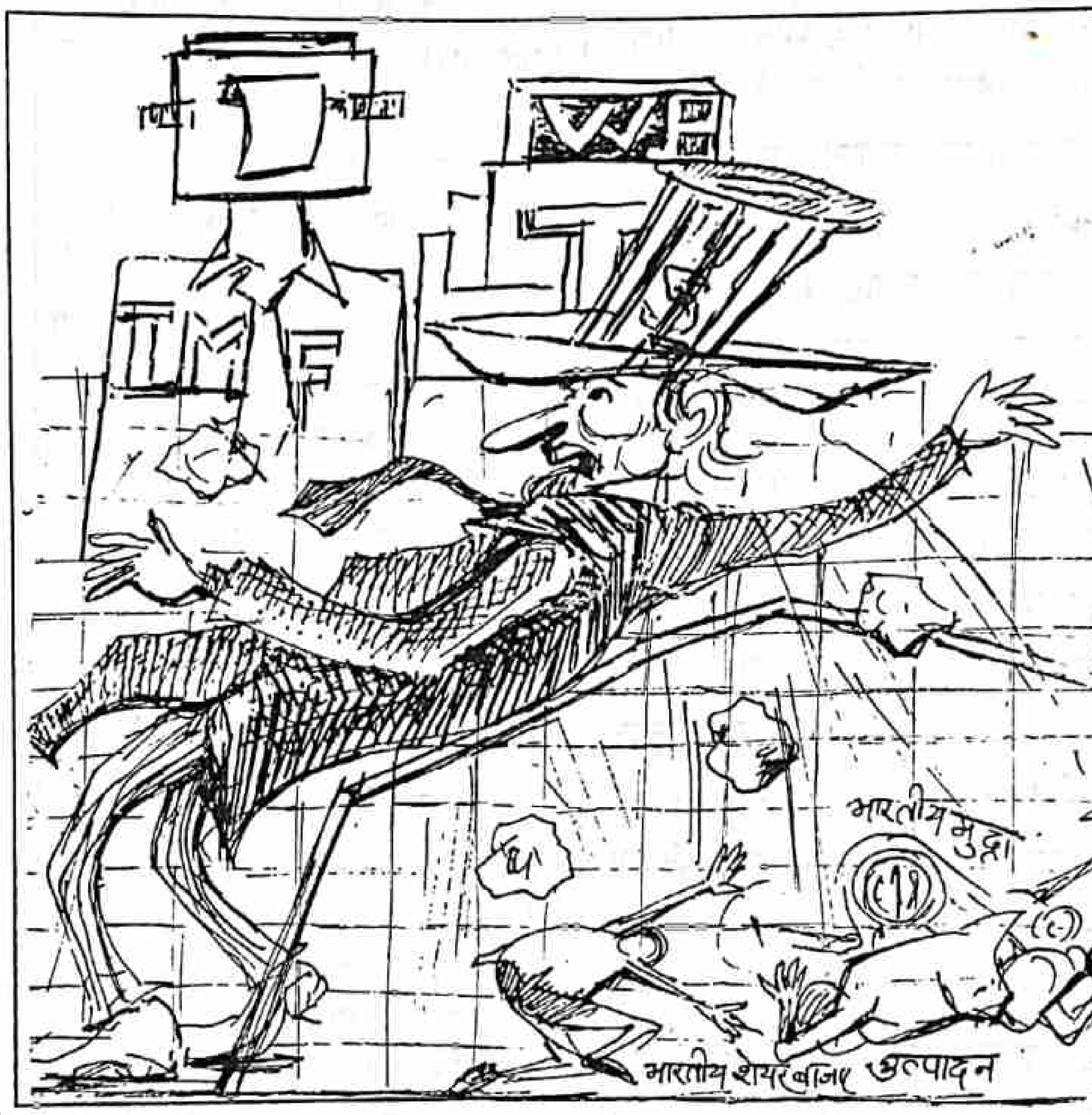

प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री ई०एफ० सुमाकर ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'स्मॉल इज ब्युटीफुल' में कहा था कि हमें ऐसा अर्थशास्त्र चाहिए जिसमें लोगों के हितों का ख्याल रखा जाता हो। लेकिन दुर्भाग्य से आज संपूर्ण विश्व में ठीक इसके विपरीत कार्य किया जा रहा है और नीतियाँ बनायी जा रही है। सितम्बर २००० में चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में दुनियाभर के मानवतावादियों ने विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक के द्वारा चलाए जा रहे अर्थनीतियों के विरोध में स्पष्ट एवं एकमत से अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि "आज तात्कालिक आवश्यकता इस बात की है कि मौजूदा अर्थशास्त्र में आमूलाग्र परिवर्तन लाया जाए। अर्थव्यवस्था लोगों के नियंत्रण में रहना चाहिए, लोगों की सेवा के लिए होना चाहिए। इसके ठीक उल्टा आज सारे समाज को, सारे लोगों को एक ही अर्थव्यवस्था के प्रारूप से जोत दिया गया है और आश्चर्य की बात यह है कि यह वही आर्थिक प्रारूप है जिसकी विफलता पिछले पचास वर्ष में विश्व स्तर पर सिद्ध हो चुकी है।"

भारतीय अर्थव्यवस्था को भी वैश्वीकरण प्रक्रिया से जुड़ने के दस वर्ष हो रहे हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम" के सर्वकालिक एवं पवित्र अर्थों को आज के 'ग्लोबलाइजेशन' के स्वार्थी एवं विनाशक सिद्धांतों से जोड़कर देखा जा रहा है। वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के जो फायदे गिनाए गए थे वे पिछले दस वर्षों में एक-एक करके धराशायी हो रहे हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था का आकलन इस बात से किया जाना तर्क संगत है कि उसने रोजगार के कितने अवसर पैदा किए। भारतीय संदर्भ में यह और प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि भारत की वर्तमान जनसंख्या एक अरब को पार कर चुकी है और प्रतिवर्ष रोजगार प्राप्त करने वालों का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है।

वैश्वीकरण को भारत में प्रचलित करने वाले प्रथम वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने उस समय संसद में अपने बजटीय भाषण में कहा था कि वैश्वीकरण उदारीकरण एवं निजीकरण के बाद देश में प्रतिवर्ष एक करोड़ रोजगार के अवसर पैदा होंगे। लेकिन

Scanned with OKEN Scanner

रोजगार निर्माण की सारी नीतियाँ भारत में बेतहाशा बढ़ रहे बेरोजगार युवकों को रोजगार दिलाने में अक्षम रही। उदारीकरण के आरंभिक वर्षों में तो ऐसा माहौल बनाया गया कि रोजगार प्राप्ति भारत में कोई समस्या ही नहीं रहेगी। नए क्षेत्रों में हालाँकि रोजगार के अवसर तो बढ़ाए गए लेकिन आर्थिक सुधार के नाम पर नौकरी से हटाने वाले कर्मचारियों की विशाल संख्या ने विकट स्थिति पैदा कर दी।

आर्थिक सुधार का दूसरा चरण शुरू करने वाले वर्तमान सरकार के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने वर्ष १९९८ में लाल किला से राष्ट्र के नाम सम्बोधित अपने भाषण में कहा था कि ''बेरोजगारी हटाना हमारे राष्ट्रीय एजेंडा का महत्वपूर्ण शपथ है। यह सभी के जीवन को प्रभावित करता है। रोजगार की प्राप्ति ही सभी लोगों के मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन हो सकता है। पूर्ण रोजगार की प्राप्ति कठिन अवश्य है लेकिन असंभव नहीं। लेकिन अच्छा यह होगा कि मौलिक आवश्यकताएँ एवं सेवाओं के अवसर आम आदमी के द्वारा ही पैदा किए जाए। विज्ञान और तकनीक इसमें सहयोगी भूमिका में आवश्यक है।

''इसलिए सरकार ने निर्णय लिया है कि १० करोड़ लोगों को आने वाले १० वर्षों में रोजगार प्रदान किए जाएंगे। तात्पर्य यह कि प्रतिवर्ष एक करोड़ लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त होने चाहिए। इस योजना के लिए एक कार्य दल बनाया जाएगा जो शीघ्र ही अपना रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगा।''

(१५ अगस्त, १९९८ के भाषण का अंश)

लालकिले के प्राचीर से घोषित इस 'कार्यदल' का मुखिया कौन बने यही विवाद का विषय बन गया। यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि जब भी ऐसी किसी तरह की योजना की शुरुआत होती है तो उसके मुखिया के रूप में किसी ऐसे व्यक्ति का चयन नहीं किया जाता है जिसे समग्र भारतीय जीवन व्यवस्था का विवेकपूर्ण ज्ञान रहता है। इसका दूसरा पहलू भी सत्य है कि मुखिया बनने के बाद न तो उस व्यक्ति की ही इच्छा होती है कि भारत को समग्र रूप में देखकर फिर कोई नीति बनाई जाए न ही वह नीति विकास गति को आगे बढ़ाने वाली होती है। 'रोजगार के अवसर' कार्यदल की रिपोर्ट की अध्यक्षता का भार भी योजना आयोग के सदस्य श्री मोंटेक सिंह आहलुवालिया को सौंपा गया। ज्ञातव्य हो कि इसी महाशय की अध्यक्षता में Y2K कार्यदल का भी गठन किया गया था जिसने पूरे देश में एक ऐसे माहौल का निर्माण किया या कराया जैसे लगता हो कि १/१/२००० को पूरा देश अचानक काल के गाल में समा जाएगा। अरबों रुपए न्यारे-वारे हो गए। Y2K का पलीता फुस्स हो गया।

इससे भी विवादास्पद बात यह थी कि मोंटेक सिंह आहलुवालिया की अध्यक्षता में गठित इस समिति के सदस्यों के चयन में योजना आयोग ने सारी मर्यादाओं का उल्लंघन कर दिया। प्रारंभ में चयनित कई सदस्यों ने तुरत अपना इस्तीफा सरकार को सौंपा दिया। तब जाकर विश्व बैंक, मुद्रा कोष के अनुकूल इस 'रोजगार के अवसर' कार्यदल के सदस्यों का चयन किया गया।

ज्ञातव्य हो कि कार्यदल को जारी अधिसूचना में रिपोर्ट जारी करने की अंतिम तिथि ३१ जुलाई १९९९ को थी। जबकि इसका गठन ही १६ फरवरी १९९९ को हो पाया था। इससे साफ

'रोजगार के अवसरों' कार्यदल : गठन एवं मुद्दे

रोजगार के अवसरों पर कार्यदल का गठन योजना आयोग द्वारा वर्ष १९९९ के २१ जनवरी का पंत्राक पी० २२०९९/१५/९८/एल. इ.एम./ई.आर.एस. को किया गया। इस कार्यदल के अध्यक्ष के रूप में श्री मोंटेक सिंह आहलुवालिया सदस्य, योजना आयोग का नाम तय किया गया। कार्यदल के सामने प्रमख मुद्दे रखे गए थे –

(क) देश में वर्तमान में रोजगार/बेरोजगार की स्थिति की जाँच।

(ख) दस करोड़ लोगों को आगामी दस साल में रोजगार उपलब्ध कराने के लक्ष्य प्राप्ति हेतु रोजगार निर्माण के लिए रणनीति बनाना। अर्थात् प्रति वर्ष एक करोड़ लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के उपाय सुझाना।

(ग) इसके अलावा अन्य कोई विषय जो उपर्युक्त दोनों तथ्यों के साथ संबंध रखते हों।

कार्यदल में निम्नलिखित सदस्य थे – प्रो प्रवीण विसारिया; प्रो. निर्मल बनर्जी; प्रो. के. सुन्दरम; प्रो. सुभाष गंगोपाध्याय; प्रो. एस. महेन्द्र देव; महासचिव - फिक्की; महानिदेशक - सी.आई.आई.; सचिव, लघु उद्योग एवं कृषि ग्रामीण विकास विभाग; सचिव, श्रम मंत्रालय; सचिव, ग्रामीण रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन; वरिष्ठ आर्थिक सलाहकार, वित्तमंत्रालय।

इसके अलावे कार्यदल ने अपने विभिन्न बैठकों में योजना आयोग के वरिष्ठ सदस्यों को भी बुलाया।

इस कार्यदल ने निम्नलिखित उपविभाग भी बनाए थे।

उपविभाग	अध्यक्ष
(i) श्रम बल एवं रोजगार	श्री प्रवीण विसारिया
(ii) कौशल विकास एवं प्रशिक्षण	प्रो. अशोक चन्द्र
(iii) विशेष रोजगार कार्यक्रम	प्रो. एस.आर. हासीम
(iv) क्षेत्रीय नीतियाँ	डॉ. अमित मित्रा

इस कार्यदल ने कुल आठ बैठकें की। वर्ष १९९९ में ५ बैठकें, वर्ष २००० में दो बैठकें एवं २००१ में एक बैठकें की। २४/५/२००१ को इस कार्यदल ने अंतिम बैठक की।

Scanned with OKEN Scanner

स्पष्ट है कि सरकार इस विषय पर कितनी ईमानदारी से आगे बढ़ने को सोच रही थी।

कार्यदल के रिपोर्ट पर विश्लेषण करने से पहले यह आवश्यक होगा कि एक नजर भारत में बेरोजगारी की स्थिति पर डाला जाए।

बेरोजगारी का स्वरूप

भारत में पायी जानी वाली बेरोजगारी संरचनात्मक या ढ़ाँचागत किस्म की है। आजादी के बाद बढ़ते जनसंख्या के दृष्टि से इसे गौण समझा जाता रहा। योजना दर योजना वर्ष बीत गया लेकिन इस समस्या का समाधान तो दूर इसके नजदीक भी पहुँचना किसी भी सरकार के लिए संभव नहीं हुआ। शिक्षा का प्रसार तो हुआ लेकिन शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ने लगी। आज बड़े पैमाने पर शहरी क्षेत्रों, ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी सभी जगह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में व्याप्त है।

अगर एक वाक्य में कहा जाए तो भारत में बेरोजगारों की वास्तविक संख्या देने में देश की कोई भी सांख्यकीय संस्था सक्षम नहीं है। इस कार्य में सैद्धांतिक एवं सांख्यकीय कठिनाईयाँ दोनों है। योजना आयोग, भारतीय जनगणना रिपोर्ट, रोजगार प्रशिक्षण महानिदेशक, रोजगार कार्यालय, केंद्रीय सांख्यकी संगठन, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण आदि कोई भी संगठन पूर्ण शुद्धता के साथ बेरोजगारी के आँकड़े प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इन सभी के द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में काफी अंतर रहता है। ज्ञातव्य हो कि १९७० में विशेषज्ञों की दाँतवाला समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि देश में बेरोजगारी के संबंध में लगाया गया अनुमान सही नहीं है। बेरोजगारी के गहराते संकट ने

*रोजगार कार्यालय में पंजीकरण, रिक्तियाँ, नियुक्तियाँ की स्थिति

(हजार में)

वर्ष	रोजगार कार्यालय की संख्या	पंजीकरण	रिक्यिाँ	नियुक्तियाँ
१९८६	८२१	५,५३५.४	६२३.४	३५१.३
१९८७	८३५	६,०११.७	६००.९	३३४.४
१९८८	८४०	५.९६३.२	५४३.३	३२८.५
१९८९	८४९	६,५७५.८	६००.२	२८९.२
१९९०	८५१	६,५४०.०	४९०.९	२६४.५
१९९१	८५४	६,२३५.९	४५८.६	२५३.०
१९९२	८६०	५,३००.६	४११.६	२३८.७
१९९३	८८७	५,५३२.२	३८४.७	२३१.४
१९९४	८९१	५,९२७.३	३९६.४	२०४.९
१९९५	८९५	५,८५८.१	३८५.७	२१४.९
१९९६	९१४	५,८७२.४	४२३.९	२३३.०
१९९७	९३४	६,३२२.०	३९३.०	२७५.०
१९९८	९४५	५,८५२.०	३५८.८	२३३.३
१९९९	९५५	५.९६६.०	–	२२१.०

स्रोत : डी.जी.ई.एंड.टी.

दसवीं पंचवर्षीय योजना में काम कर रहे विशेषज्ञों को परेशानी में डाल रखा है। पिछले दिनों देश में रोजगार के अवसर न बढ़ने के मुद्दे योजना आयोग के संचालन समिति की बैठक में भी छाया रहा। योजना आयोग की संचालन समिति इस बात से बहुत चिंतित है कि

भारत में पायी जानी वाली बेरोजगारी संरचनात्मक या ढ़ाँचागत किस्म की है। आजादी के बाद बढ़ते जनसंख्या के दृष्टि से इसे गौण समझा जाता रहा। योजना दर योजना वर्ष बीत गया लेकिन इस समस्या का समाधान तो दूर इसके नजदीक भी पहुँचना किसी भी सरकार के लिए संभव नहीं हुआ।

अगर रोजगार के अवसर यूँ ही घटते रहे तो सामाजिक विषमताओं का बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो जाएगा।

भारत में रोजगार देने के जो सरकारी प्रयास है उसकी हालत कितनी दयनीय है और वह किस हद तक अपने लक्ष्य में सक्षम हो पाया है इसकी जानकारी तालिका से स्पष्ट होगी।

अगर उपर्युक्त विवरण पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि भारत में बेरोजगारी की दशा एवं दिशा कितनी गंभीर एवं भ्रम युक्त है। हालात तो यह है कि अब आम लोगों का रोजगार कार्यालय में जाकर पंजीकरण कराने में भी कोई मोह नहीं रह गया है।

संगठित क्षेत्रों में लोगों को रोजगार सुनिश्चित करवाने में इन रोजगार कार्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देश के ग्रामीण देहातों में रहने वाले लोगों तक अन्य सूचना के स्रोत उपलब्ध नहीं होने के कारण रोजगार कार्यालय प्रमुख स्रोत था। लेकिन सरकार की नई

Scanned with OKEN Scanner

आर्थिक नीतियों ने संगठित क्षेत्र को भी असुरक्षित बना दिया है।

५५वीं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं बेरोजगारी

यह सर्वेक्षण जो पिछले वर्ष प्रकाशित हुई, थी ने रोजगार के अवसरों की बेहद चिंताजनक तस्वीर प्रस्तुत की है। इसने आर्थिक सुधार प्रक्रिया पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हुए स्पष्ट कहा है कि आर्थिक सुधार रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने में नाकाम रही है। १९९३-९४ से १९९९-२००० की अवधि में रोजगार की वृद्धि दर प्रतिवर्ष १ प्रतिशत दर्ज की गई जबकि इसी कालखंड में रोजगार की आवश्यकता में वृद्धि दर २.३ प्रतिशत रही। कृषि क्षेत्र एवं इससे जुड़ी आनुषांगिक इकाईयों में भी श्रमिकों की संख्या में जबरदस्त गिरावट देखी गई है जबकि आज भी कृषि में कुल श्रम क्षेत्र का ६०% रोजगार प्राप्त है। १९९४-२००० के दौरान वेतनभोगी बेरोजगार लोगों की संख्या ५.१ करोड़ से बढ़कर ५.९ करोड़ हो गयी यानि ८० लाख की वृद्धि हुई। आश्चर्य की बात है कि इस दौरान शहरों में वेतनभोगी बेरोजगारों की संख्या ६० लाख बढ़ी जबकि गाँवों में मात्र २० लाख। २.३ प्रतिशत की दर से रोजगार की आवश्यकता में वृद्धि एवं १ प्रतिशत से रोजगार में बढ़ोत्तरी 'रोजगार विहीन वृद्धि' को इंगित करता है। विकसित देशों में 'रोजगार विहीन वृद्धि' तो समझ में आता है लेकिन भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में ''जॉबलेस ग्रोथ' न तो आवश्यक है न ही उपयुक्त।

२.३ प्रतिशत की दर से रोजगार की आवश्यकता में वृद्धि एवं १ प्रतिशत से रोजगार में बढ़ोत्तरी 'रोजगार विहीन वृद्धि' को इंगित करता है। विकसित देशों में 'रोजगार विहीन वृद्धि' तो समझ में आता है लेकिन भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में ''जॉबलेस ग्रोथ' न तो आवश्यक है न ही उपयुक्त।

रोजगार वृद्धि गलत

ज्ञातव्य हो कि मोंटेक सिंह आहलुवालिया कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ५५वीं रिपोर्ट के द्वारा प्रस्तुत तथ्यों पर ही प्रश्न चिन्ह लगाया है। इस रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है कि हमें रोजगार की उपलब्धि को संख्या की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए कि कितने लोगों को रोजगार मिला अपितु जो रोजगार हम दे रहे हैं उसकी गुणवत्ता क्या है? विडंबना देखिए कि उन्हें 'रोजगार के अवसरों' पर रिपोर्ट देने को कहा गया था लेकिन अपने रिपोर्ट के अध्याय एक में उल्लेख है कि 'चूँकि हम रोजगार में उच्च गुणवत्ता को महत्व दे नहीं पाए इसलिए रोजगार प्राप्त लोगों के बीच असंतोष व्याप्त है।' और इसलिए कार्यदल का सुझाव है कि भविष्य में रोजगार के अवसर जुटाते समय संख्या की अपेक्षा गुणवत्ता को ध्यान में रखा जाए।

सेवा क्षेत्र में 'संभावना' भी संदिग्ध

मोंटेक कार्यदल रिपोर्ट ने निर्माण एवं कृषि जो आज तक सर्वाधिक रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र था उसको दरकिनार करते हुए 'सेवा' क्षेत्र के प्रोत्साहन पर जोर दिया है और कहा है कि भविष्य में यही एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें ७० प्रतिशत रोजगार की संभावनाएँ है।

लेकिन सच्चाई यह है कि सुधार पूर्व आर्थिक विकास दर एवं सुधार के बाद आर्थिक विकास में मामूली वृद्धि (०.८ प्रतिशत) के बाद विकास दर पुनः नीचे की ओर है। सुधार के बाद विकास को ६.४ प्रतिशत तक पहुँचाने में सेवा क्षेत्र का विशेष योगदान रहा था। लेकिन उसी सेवा क्षेत्र में रोजगार की संभावनाओं पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा प्रतिवर्ष जारी होने वाले आर्थिक सर्वेक्षण के ताजा अंक के अनुसार १९९९-२००० में सेवा क्षेत्र में ९.२ प्रतिशत की वृद्धि थी वही २०००-२००१ में यह वृद्धि घटकर ८.३ प्रतिशत रह गयी। ऐसी स्थिति में सेवा क्षेत्र को रोजगार के व्यापक संभावना वाला क्षेत्र बताना महज दिवास्वप्न है। इसलिए आर्थिक सुधार में सेवा क्षेत्र के महत्वपूर्ण हिस्सेदारी को भारतीय अर्थव्यवस्था में एक नए संकेत के रूप में पेश करने की चाल को ढ़ोल उस समय फट गयी जब इस क्षेत्र ने अधोगामी रूप अख्तियार कर लिया। ऐसे लोगों को शायद इस बात का अंदाजा नहीं है कि सेवा क्षेत्र का आधार भूमि उद्योग एवं कृषि ही है। इसके कमजोर होने पर सेवा क्षेत्र का कमजोर होना स्वभाविक है।

अलोकतांत्रिक एवं समग्रता का अभाव

इस रिपोर्ट से अपेक्षा की गई थी कि यह कार्यदल रोजगार के अवसर पर एक व्यवहारिक एवं समस्या के मद्देनजर

Scanned with OKEN Scanner

...क गंभीर रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। लेकिन ...ह रिपोर्ट एक अकादमिक कार्य होकर ...र रह गया है। कार्यदल ने उपलब्ध आँकड़ों के गुणनफल एवं जोड़ घटव ...रने के बाद रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिया ।

- कार्यदल ने प्रथम वर्ष में तो ६ मीटिंग किया लेकिन अगले २ वर्षों में २ मीटिंग की कर पाया। उसमें भी समाज के किसी भी लाभ वर्ग ने भाग नहीं लिया।
- कार्यदल ने किसी भी राज्यों का दौरा नहीं किया परिणामस्वरूप रिपोर्ट का समग्र स्वरूप उभर कर नहीं आया है।
- रोजगार एवं बेरोजगारी से प्रभावित क्षेत्रों का न तो सर्वेक्षण कराया गया है न ही वैसे आँकड़ों का उपयोग किया गया है।
- कृषि क्षेत्र को पुनः दोयम दर्जे का मानकर उसे नकारा गया है।

अगर स्पष्ट शब्दों में कहें तो यह रिपोर्ट अव्यवहारिक एवं समस्या का सही आकलन करने में असफल साबित हुआ है।

राजग एजेंडा के विरुद्ध

चुनाव के समय वर्तमान लोकतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने जो चुनावी घोषणापत्र तैयार किया था उसमें रोजगार के संबंध में निम्न बातें कही थी।

१. राजग सुधार कार्यक्रम को पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्जीवित करेगी एवं बेरोजगारी हटाने को प्राथमिकता देगी।
२. 'पूर्णतः गरीबी उन्मूलन' को अपनाकर राष्ट्रीय विकास को मानवोचित बनाया जाएगा एवं इसके लिए 'बेरोजगारी हटाओ' का नारा दिया गया।
३. अन्य क्षेत्रों के अलावा कृषि जो अपार संभावना वाला क्षेत्र है एवं अभी तक उपेक्षित है, को रोजगार प्रदान करने हेतु प्राथमिकता दिया जाएगा।

उपर्युक्त घोषणापत्र के मद्देनजर अगर कार्यदल रिपोर्ट की अनुशंसाओं पर नजर डालते हैं तो स्थिति ठीक विपरीत दिखाई देती है।

राजग एजेंडा जहाँ कृषि के साथ-साथ, कारीगर, किसान, लघु उद्योग, खादी, हस्तकरधा को रोजगार प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण क्षेत्र मानकर उसे प्राथमिकता देने की बात कहता है वहीं कार्यदल रिपोर्ट आने वाले समय में इन क्षेत्रों के अलावा सेवा क्षेत्र में ७०% रोजगार की संभावना की बात करता है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि अभी हाल में योजना आयोग द्वारा गठित लघु उद्योगों पर एस.पी. गुप्ता कमिटी के रिपोर्ट को भी मोंटेक कार्यदल रिपोर्ट की अनुशंसाएं गलत ठहराता है।

अनुशंसाएँ विश्व बैंक मुद्राकोष की नकल

इस कार्यदल के रिपोर्ट ने जितनी अनुशंसाएँ की है उसमें थोड़ा भी नयापन नहीं है अपितु पुरानी बातों को उद्योगपतियों के अनुकूल बनाकर परोसी गई है। यह बात इससे स्पष्ट होता है कि हाल ही में विश्व बैंक एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सरकार पर श्रम मानकों को लचीला बनाने का दबाव दिया था। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को एवं विदेशी निवेश को लुभाने हेतु वित्तमंत्री ने अपने बजटीय भाषण में लीक से हटकर श्रम कानूनों में बदलाव की बात संसद में की थी। इसके विरोध में भारतीय मजदूर संघ ने १६ अप्रैल २००१ को ऐतिहासिक रैली में सरकार को बड़े एवं स्पष्ट शब्दों में चेतावनी थी कि सरकार इस तरह के किसी भी बेजा हरकतों से बाज आए। इसके अलावा सरकार ने श्रम कानूनों में सुधार के लिए सुझाव देने हेतु एक श्रम आयोग का गठन भी किया है। लेकिन इस रिपोर्ट से पूर्व मोंटेक रिपोर्ट भी विश्व बैंक, मुद्रा कोष के तर्ज पर श्रम कानूनों को लचीला बनाने का सुझाव दे डाला है।

ग्रामीण जमीन को शहरी उपयोग हेतु नियमों में परिवर्तन की बात यह रिपोर्ट बड़ी आसानी के साथ कहता है। परिवहन कृषि, विनिर्माण सभी क्षेत्रों में बड़े-बड़े कंपनियों को आने की छूट की अनुशंसा से यह रिपोर्ट भरा पड़ा है।

निष्कर्ष

पूर्ण रोजगार की उपलब्धि एक आसान काम नहीं है लेकिन यह संभव है। आवश्यकता इस बात की है कि योजना प्रक्रिया में आमूल-चूल परिवर्तन किया जाए एवं आम-आदमी को विकास प्रक्रिया में भागीदार बनाया जाए। 'रोजगारहीन वृद्धि' भारत जैसे देश के लिए न तो लाभदायक है न ही स्वीकार्य। इससे पूर्व मोहन धारिया कमिटी, आबिद हुसैन कमेटी, आदि को नजरअंदाज करके मोंटेक सिंह अहलुवालिया कार्यदल की रिपोर्ट की अनुशंसाए न तो रोजगार बढ़ाने वाला हो सकता है न ही विकास को सही दिशा दे सकता है। अतः शीघ्र ही इस रिपोर्ट के मूल्यांकन एवं प्रासंगिकता को लेकर जाँच कमेटी बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि रोजगार के अवसरों में भारत के आम आदमी को भी लाभ मिल सके। ■

Scanned with OKEN Scanner

स्वदेशी से दूर रहकर दुर्दशा में है आजादी

■ भानुप्रताप शुक्ल

पंद्रह अगस्त १९४७ की आधी रात अंग्रेजों की गुलामी से देश आजाद हुआ। इसी दिन अंग्रेजों ने कांग्रेस को सत्ता हस्तांतरित किया था और द्विराष्ट्रवादी मुस्लिम लीगियों और उनके समर्थकों ने देश को आग का दरिया बना दिया था। आज के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी पंद्रह अगस्त की पीड़ा से तब बहुत ही आहत हुए थे। उन्होंने जलते देश, विभाजित भारतभूमि, मार दिए गए मासूम लोगों और आजादी के दीवाने शहीदों की लालसाओं को शब्द-स्वर प्रदान करते हुए लिखा था कि **"पंद्रह अगस्त का दिन कहता है आजादी अभी अधूरी है, सपने सच होने बाकी हैं। रावी की शपथ न पूरी है। जो पाया उसमें खो न जाएं। जो खोया उसको याद करो।"** उसी अधूरी आजादी का जश्न तब से अब तक लगातार मनाया जा रहा है और अब शायद श्री वाजपेयी को भी अपनी वह कविता स्मरण नहीं है। लेकिन उनकी कविता का सच – आजादी का अधूरापन देश के चेहरे पर पीड़ा की लकीरों से अंकित हो चुका है। प्रमुख रूप से जिनकी भावना में स्वतंत्र भारत के स्वरूप की स्वर्णिम कल्पना थी जिसके लिए उन्होंने कार्य किए आज वे लोग आजादी के अधूरेपन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कातर हो जाते हैं।

मैं 'रामस्वरूप' तब अट्ठारह वर्ष का था और बहुत अधिक नहीं तो 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा' का नारा लगाते हुए आजाद होने की तमन्ना में अपने गांव की गलियों में मैंने भी प्रभात फेरियां निकाली थीं। आजादी की उम्र अब ५४ साल की हो गई है और मेरी ७२ वर्ष की। पंद्रह अगस्त को झंडारोहण की तैयारियों में फिर लगना पड़ेगा। स्वतंत्रता सेनानी हूँ न। इस कारण हर साल औपचारिता निभानी ही पड़ती है। किंतु इस बार मेरा मन बहुत ही उदास और बेहद खट्टा है और महज एक औपचारिकता के लिए अपने आपको साल भर क्यों कोसूं? जब मेरी आवाज नक्कारखाने की तूती बन गई है तो अंतरात्मा की आवाज को अनावश्यक रूप से क्यों झकझोरता रहूँ। आजादी! किसके लिए और किसकी आजादी? आजादी तीन अक्षरों का सिर्फ जमावड़ा ही तो नहीं है। क्या केवल इन तीन अक्षरों के लिए ही हमारी पीढ़ियां-दर-पीढ़ियां खपी थीं? १८५७ से लेकर १९४७ तक क्या हम इसी आजादी के लिए जूझते रहे थे? यदि मुझे यह पता होता कि जिस आजादी के लिए मैं जूझ रहा हूँ उसका यही हश्र होगा तो गुलाम रहना ही पसंद करता। गत ५४ वर्षों में मन बहुत ही कसैला हो गया है, इसीलिए ये कड़वी बातें निकल रही हैं। यह सही है कि गुलामी में मोती के दाने से आजादी की सूखी रोटी अधिक अच्छी और स्वादिष्ट होती है, किंतु उस सूखी रोटी के स्वाद में अपनापन तो होना ही चाहिए। आजादी के आटे में ईमानदारी का पसीना तो होना ही चाहिए। आजाद, स्वाधीन, स्वतंत्र वाले देश में क्या बेईमानी, भ्रष्टाचार लूट-खसोट, अनैतिकता और कुशासन का यूँ ही बोलबाला होता है? हमने स्वशासन तो इसलिए नहीं चाहा था कि स्वदेशी शासक स्वदेश की संस्कृति, सभ्यता, जीवन मूल्यों, नैतिकता और मानवता का गला घोंट दें? हमें तो स्वशासन के साथ सुशासन की भी चाह थी। अब हमारी इस चाहत की परवाह किये है? शासन चलाने वाले

> ***हमने स्वशासन तो इसलिए नहीं चाहा था कि स्वदेशी शासक स्वदेश की संस्कृति, सभ्यता, जीवन मूल्यों, नैतिकता और मानवता का गला घोंट दें? हमें तो स्वशासन के साथ सुशासन की भी चाह थी अब हमारी इस चाहत की परवाह किये है? शासन चलाने वाले शासकों-प्रशासकों के सामने हमारी बिसात ही क्या?***

Scanned with OKEN Scanner

शासकों-प्रशासकों के सामने हमारी बिसात ही क्या? बूढ़ा शरीर अब बहुत बीमार रहने लगा है; किंतु उससे भी अधिक बीमार है मन। कहीं कोई राष्ट्रीय उल्लास नहीं। कहीं कोई सामाजिक खुशी नहीं। आत्मा पर बोझ बनकर उदासीनता दबाव डालने लगी है।

उस दिन श्री रामविलास वर्मा आए थे। वह स्वतंत्रता आंदोलन के हमारे बहादुर साथी हैं। उनका भी शरीर जर्जर हो गया है, फिर भी वह अपने शरीर की फुर्ती खोने नहीं दे रहे हैं। चार घंटे रोज मंत्रालयों के चक्कर काटते हैं। उनका अपना कोई काम नहीं होता। स्वतंत्रता सेनानी होने के नाते सरकार जो आर्थिक और अन्य सुविधाएं दे रही है उसे मेरी तरह वह भी ठुकरा चुके हैं। उन्हें भी देश की चिंता है। वह यह मानते हैं कि देश कार्य में उनकी कोई भूमिका अभी भी बची है। इसलिए हर नेता और हर मंत्री को सुशासन लाने का सुझाव देते फिरते हैं। मैं उन्हें दुनियादारी समझाने की कोशिश करता हूँ तो मुझे झटक देते हैं। कहते हैं 'पंडित, क्या इसी दिन के लिए हमने अंग्रेजों को लात मारी थी? तुमको याद है न, जब वायसराय ने सुलह का न्यौता भिजवाया था। आंदोलन छोड़ने की एवज में तमाम सुख-सुविधाओं का अंबार लगाने का लालच दिया था। तब तुम्हीं ने तो कहा था कि हमारी खामोशी से वे हमारे लोगों के ही रक्त पीने के लिए अपने दांत मजबूत करेंगे। हमें तो लड्डू खिलाएंगे, किंतु हमारे करोड़ों भाइयों का निवाला छीन लेंगे।' मैंने वर्मा को बहुत समझाया कि भाई अब भी वही हो रहा है। देश के महज तीन फीसदी लोग सुख-चैन की बंशी बजा रहे हैं, सत्तानवे फीसदी लोग खून के आंसू रो रहे हैं। वर्मा जी अर्थशास्त्र नहीं जानते, इसलिए उनको खोलकर समझाया कि

ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री मार्गरेट थ्रैचर ने १९८० के दशक में जिस उदारीकरण का दर्शन दिया था उसका जहर इक्कीसवीं शताब्दी को पूरी तरह डंस चुका है। दस साल से हिंदुस्तान भी उसके चपेटे में है।

आर्थिक उदारीकरण से देश की गरीबी दूर करने का दिवास्वप्न देखने वाले लोग अब इस हकीकत को जान चुके हैं कि महज तीन फीसदी लोगों की भलाई के लिए वे राष्ट्र को दिवालिया बनाने जा रहे हैं, लेकिन उनकी विवशता देखिए कि सब कुछ जानते हुए भी बरबादी की बिसात बिछाते जा रहे हैं। हमारे जमाने में क्वीन विक्टोरिया, लार्ड वायसराय, कंपनी हुजूर और कंपनी फौज

हमें औद्योगिक और व्यापारिक समुदाय से बाहर कर दिया जाएगा। हमारे देश की सीमाओं पर दबाव बढ़ा दिया जाएगा। देश के दुश्मनों को उकसा दिया जाएगा।

के कमांडर का खौफ था, इसलिए हम कुछ कह और कर नहीं पा रहे थे। अब हमें अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, रूस, चीन, फ्रांस, जापान और जर्मनी का डर है, इसलिए हमारी सरकार कुछ नहीं कर पा रही है। पहले हम गुलाम थे, अब सरकार गुलाम है। पहले यह उम्मीद थी कि हमारे स्वतंत्रता सेनानी इस विकट परिस्थिति से देश को आजाद करा ही लेंगे। अब हमें डर है कि कमजोर रीढ़ वाली हमारी सरकारें कहीं राष्ट्र की संप्रभुता का भी सौदा न कर लें। तब ब्रिटेन की महारानी का आधी से अधिक दुनिया पर शासन चलता था, अब उस साम्राज्यवादी सोच वाले संगठन विश्व व्यापार संघ का लगभग पूरी दुनिया पर दबदबा हो गया है। गुलाम थे तो हमेशा यह डर था कि हम कुछ कठोर कदम उठाएंगे तो जेल में डाल दिए जाएंगे, काला पानी की सजा हो जाएगी, फांसी पर लटका दिए जाएंगे। अब आजाद हैं तो डर यह है कि यदि आर्थिक साम्राज्यवादियों के खिलाफ कोई कदम उठाएंगे तो हमारे ऊपर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिया जाएगा। हमें औद्योगिक और व्यापारिक समुदाय से बाहर कर दिया

Scanned with OKEN Scanner

हमने कभी भी अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने की देशी नीति और स्वदेशी उपाय पर भरोसा नहीं किया। हमारी तुलसी माता और नीम की पत्ती भी हमारी नहीं रही। वर्मा जी मेरी इस बात से सहमत हैं। कहते हैं कि आजादी की नींव ही गलत पड़ गई। देश एक ऐसे आदमी के हाथ में चला गया जिसकी सोच कहीं से भी 'स्वदेशी' नहीं थी। जवाहर लाल नेहरू ने जन्म भले ही भारत में लिया हो, वह पले-बढ़े थे विदेश में।

जाएगा। हमारे देश की सीमाओं पर दबाव बढ़ा दिया जाएगा। देश के दुश्मनों को उकसा दिया जाएगा।

यह स्थिति तो गुलामी से भी ज्यादा भयंकर और बदतर है कि हमारे उद्योग समिट रहे हैं, हमारी कंपनियाँ बंद हो रही हैं, हमारे किसान आत्महत्या कर रहे हैं, हमारे मजदूर भूखे मर रहे हैं, बेरोजगारी से त्रस्त हमारे जवान अपराध की ओर उन्मुख हो रहे हैं, हमारी माताएँ और बहनें जलील हो रही हैं और हम फिर भी खामोश है। गुलाम भारत में हमें सबक सिखाने के लिए अंग्रेज जो काम किया करते थे, आजाद भारत में अब हमारी सरकारों को वही काम करना पड़ रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हमारी सरकारें जनता को 'सबक' सिखा रही हैं, बल्कि विदेशियों द्वारा हमारी सरकारों को एक के बाद एक सबक दिया, पढ़ाया और सिखाया जा रहा है। आर्थिक साम्राज्यवादी ताकतों ने हमारे देश को जिस लौह जंजीर में जकड़ लिया है उससे छुटकारा पाना अब आसान नहीं रहा। वर्मा जी है कि यह बात मानने के लिए कतई तैयार नहीं हैं। उन्हें अब भी आशा की किरण दिखाई देती है। वह कहते हैं कि मौजूदा पीढ़ी पर सही, किंतु हमें देश की भावी पीढ़ी पर भरोसा करना और भरोसा रखना ही चाहिए। वही हमें इस संत्रास और संताप से निकालेगी। मैंने कुछ आंकड़े देकर उन्हें फिर समझाने की कोशिश की। ये आंकड़े मेरे नहीं आजाद हिंदुस्तान की आजाद सरकार के हैं।

पिछले दस साल से अधिक रोजगार के अवसर कम हुए हैं। हजारों लघु और मझौले उद्योग बंद हो गए हैं तो भावी पीढ़ी क्या करेगी? उन्हें देश की मुख्यधारा से जोड़ने का सरकार के पास न तो कोई कार्यक्रम है और न देश की अर्थनीति सुधारने के लिए नौजवानों के पास कोई अवसर। इस विकट स्थिति के सृजनहार हम ही हैं। हमने कभी भी अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने की देशी नीति और स्वदेशी उपाय पर भरोसा नहीं किया। हमारी तुलसी माता और नीम की पत्ती भी हमारी नहीं रही। वर्मा जी मेरी इस बात से सहमत हैं। कहते हैं कि आजादी की नींव ही गलत पड़ गई। देश एक ऐसे आदमी के हाथ में चला गया जिसकी सोच कहीं से भी 'स्वदेशी' नहीं थी। जवाहर लाल नेहरू ने जन्म भले ही भारत में लिया हो, वह पले-बढ़े थे विदेश में। उनको स्वतंत्रता आंदोलन को हांकने का अवसर मिल गया। गांधी जी की ही कृपा से वह देश के पहले प्रधानमंत्री बन गए तो उनका सिर आसमान में पहुंच गया। अपने राष्ट्र के बुद्धिजीवी, विचारक, उद्योगपति, उद्यमी और विज्ञानी उनकी नजर में पिछड़े हुए लोग थे। देशी अर्थव्यवस्था का स्वदेशी मॉडल उन्हें बेकार नजर आने लगा। सोवियत रूस की कम्युनिस्ट अर्थव्यवस्था उन्हें ज्यादा अच्छी लगी। हमारे राष्ट्र के चिंतक और विचारक समझाते रहे और गांधी जी ने भी बार-बार समझाया लेकिन वह नहीं माने। रूस की पंचवर्षीय योजना ले आए। भारत के मानव और प्राकृतिक संसाधनों को दरकिनार करके मशीनी ताकतों पर भरोसा किया।

आजादी के बाद से आज तक अपने देश के नौजवानों को दिशा देने की कोई नीति तक नहीं बनी। बेरोजगारी नौजवानों की सोच को डंसती रही। दो-चार साल नहीं पूरे चार दशक तक नेहरू का आर्थिक मॉडल चलता रहा। अचानक नेहरू के वंशजों को ही उनका मॉडल सड़ा-गला लगने लगा। तब तक सोवियत रूस भी बिखर चुका था। इन चार दशकों में हमारी अर्थव्यवस्था भी दरकने लगी थी तो भी किसी ने 'देशी-स्वदेशी' अर्थव्यवस्था को अपनाने

भारतीय संघ की 'धमनी-नाड़ी' ठीक से काम नहीं कर रही हैं। ऐसे में 'पंजाब, सिंध, गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंग' का जयगान कैसे करें? सिंधु नदी का एक हिस्सा तो हमारे पास है, किंतु सिंधु प्रदेश हमारे देश का अंग नहीं है। पंजाब का भी एक हिस्सा पाकिस्तान का बनकर पराया हो गया है। बंगाल का पूर्वी हिस्सा एक अलग राष्ट्र बांग्लादेश बन चुका है।

का विचार नहीं किया। यह कौड़ी यूरोपीय देशों और १९९१ में दूर की कौड़ी लेकर आई। यह कौड़ी यूरोपीय देशों और अमेरिका का फेंका आर्थिक पासा थी। उसे इसी तरह पेश किया गया मानो उदारीकरण जादू की कोई छड़ी हैं कि पलक झपकते ही देश का कायापलट हो जाएगा। अब परिणाम सामने आ रहा है तो हम पछता रहे हैं। अमेरिका को कम्प्यूटर और जानकारी आधारित उद्योग से कमाना था तो उसे सस्ता मजदूर और श्रम भारत का चाहिए था। इसलिए जोर देकर यहाँ कम्प्यूटर ज्ञान की आंधी चलवाई। अब इसी आंधी की हवा निकल गई है। लाखों रुपए खर्च करके अमेरिका पहुँचे हमारे नौजवानों को अब बैरंग वापस आना पड़ रहा है। इतना शोषण तो अंग्रेजों के जमाने में भी नहीं हुआ। लूट-खसोट की अर्थनीति परवान चढ़ रही है। पहले अंग्रेज किसी न किसी बहाने से हमारी सम्पदा ढोकर ले जाते रहे अब उनकी मातहत बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारी सम्पदा हमारी ही स्वीकृति से खुलेआम ढोकर ले जा रही हैं। पूरी उदारता के साथ हमारी सरकारें उनके स्वागत में लगी हैं और हम मायूस खड़े-खड़े अपनी राष्ट्रीय सम्पदा को लूटते देख रहे हैं। मैंने और वर्मा जी ने तय किया है कि इस बार स्वतंत्रता दिवस पर हम 'भारत भाग्य विधाता' नहीं गाएंगे। इसलिए नहीं कि राष्ट्रगान से हमारा मोह भंग हो गया है या हमारी देशभक्ति कमजोर हो गई है, सिर्फ इसलिए कि राष्ट्रगान की महत्ता खो गई है।

हमें याद है वह घटना जब एक अंग्रेज सिपाही ने एक हिंदुस्तानी सिपाही को 'कंपनी का कुत्ता' कह दिया था तो उस अंग्रेज के सिर पर जूते बरसाए थे। हमने देश की आजादी इसलिए तो नहीं चाही थी कि हम अपने राष्ट्र और अपने राष्ट्रीय सम्मान के प्रति संवेदनहीन, उदासीन, विवेकहीन और पशुवत हो जाएं?

हमारे राज्य विघटन, बीमारी, गरीबी और बेरोजगारी की आग में जल रहे हैं। कश्मीर रक्तरंजित हो चुका है। देश का पूर्वोत्तर विस्फोट के कगार पर है। बिहार और उत्तर प्रदेश ही नहीं, सभी सूबों में कानून व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ चुकी हैं। भारतीय संघ की 'धमनी-नाड़ी' ठीक से काम नहीं कर रही हैं। ऐसे में 'पंजाब, सिंध, गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंग' का जयगान कैसे करें? सिंधु नदी का एक हिस्सा तो हमारे पास है, किंतु सिंधु प्रदेश हमारे देश का अंग नहीं है। पंजाब का भी एक हिस्सा पाकिस्तान का बनकर पराया हो गया है। बंगाल का पूर्वी हिस्सा एक अलग राष्ट्र बांग्लादेश बन चुका है। अंग्रेजों के जमाने में अराजकता में भी एक व्यवस्था हुआ करती थी, आज व्यवस्था में भी चारों ओर अजराकता ही अराजकता है। तमिलनाडु की जयललिता भारत की संघीय व्यवस्था को धता बता रही हैं तो बंगाल की वामपंथी सरकार संविधान का मखौल उड़ाती रहती है।

इस देश के राजनीतिक दल अयोध्या, काशी, मथुरा और श्रीराम मंदिर का जिक्र आते ही साम्प्रदायिकता के नाम पर आसमान सिर पर उठा लेते हैं। पंद्रह-पंद्रह दिन संसद की कार्रवाई ठप कर देते हैं, लेकिन राष्ट्र के स्वाभिमान को चुनौती देने वाले तत्वों के खिलाफ कोई भी राजनीतिक दल मुंह नहीं खोलता। देश में विदेशियों की घुसपैठ बेरोक-टोक जारी है। इसे रोकने की जिम्मेदारी उठाने और निभाने के लिए कोई तैयार नहीं है। थोक वोट की लालच में भारत राष्ट्र के इतिहास के साथ छल और दुष्कृत्य करने वालों को नजरअंदाज कर दिया जाता है। बांग्लादेश के मुठ्ठी भर सैनिक हमारी विशाल सेना का मान मर्दन कर देते हैं, हमारे जवानों के साथ जानवरों की तरह सलूक करते हैं और देश के राजनीतिज्ञ और बुद्धिजीवी खामोश रहते हैं। हमें याद है वह घटना जब एक अंग्रेज सिपाही ने एक हिंदुस्तानी सिपाही को 'कंपनी का कुत्ता' कह दिया था तो उस अंग्रेज के सिर पर जूते बरसाए थे। हमने देश की आजादी इसलिए तो नहीं चाही थी कि हम अपने राष्ट्र और अपने राष्ट्रीय सम्मान के प्रति संवेदनहीन, उदासीन, विवेकहीन और पशुवत हो जाएं? क्या यह वही आजादी है जिसके लिए हमने दरदर की ठोकरें खाई थीं।

मैं 'रामस्वरूप' दावे के साथ कहता हूँ कि भावी पीढ़ियों के लिए सनद रहे कि 'यह वह आजादी नहीं है जिसके लिए हमने सशस्त्र और निःशस्त्र, अहिंसक और हिंसक संघर्ष किया था। यह तो खाई से निकलकर कुए में गिरने जैसा आजादी है। तब हम अंग्रेजों तथा उनकी कंपनी बहादुर सरकार के गुलाम थे अब अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय विदेशी कंपनियों की आर्थिक कपट जाल की गुलामी में फंसते जा रहे हैं।' ■

Scanned with OKEN Scanner

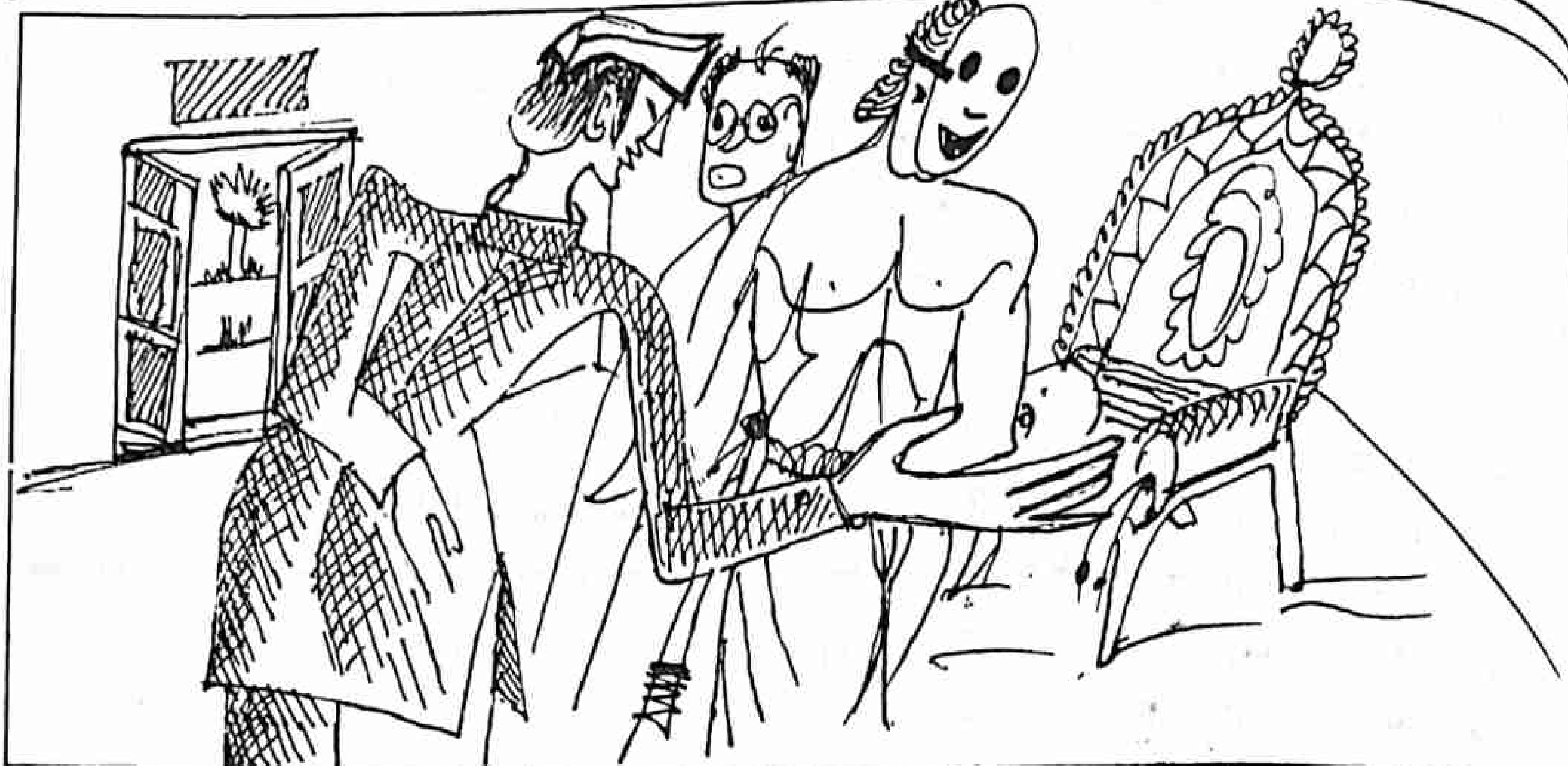

उदारीकरण के दस वर्ष और देश की स्थिति

ग्लासनोस्त की नीति ने सोवियत संघ का विघटन करा दिया। इस विघटन के बाद संसार में एक ही महाशक्ति बची अमेरिका। स्वभाविक था कि पूरी दुनिया अब अमेरिकी नीतियों के अनुसार चलती। इस प्रभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था भी आ गया........

■ *धीप्रज्ञ द्विवेदी*

१९९१ में श्री नरसिम्हाराव के नेतृत्व वाली कांग्रेसी सरकार ने अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के दबाव में आकर स्वतंत्र भारत के आर्थिक इतिहास में पहली बार उदारीकरण की शुरुआत की थी। १९७० तक भारतीय अर्थव्यवस्था बड़ी सार्वजनिक कंपनियों एवं टाटा, बिड़ला जैसे कुछ बड़े उद्योगों द्वारा संचालित एक मिश्रित अर्थव्यवस्था थी। इसके बाद अन्य निजी कंपनियाँ भी धीरे-धीरे अस्तित्व में आई, जिससे अर्थव्यवस्था का झुकाव सार्वजनिक कंपनियों से हटकर निजी क्षेत्र की तरफ बढ़ने लगा।

१९९१ में शुरु हुए उदारीकरण के कई कारण गिनाए जा सकते हैं जिनमें सर्वप्रमुख है, अमेरिकी प्रभुत्व में बढ़ोत्तरी। १९९० तक भारत की अर्थव्यवस्था राज्य आधारित कही जा सकती है और यह भी माना जा सकता है कि यह अर्थव्यवस्था तत्कालीन सोवियत संघ से अभिप्रेरित थी। ९० के दशक की शुरुआत में सोवियत संघ के राष्ट्र प्रमुख गोर्वाचोव ने ग्लासनोस्त (उदारीकरण या सुधारीकरण) की नीति अपनाई। भारतीय नीति नियंताओं पर सर्वाधिक प्रभाव रखने वाले इस देश की नीतियों का असर भारत पर पड़ना स्वभाविक ही था। ग्लासनोस्त की नीति ने सोवियत संघ का विघटन करा दिया। इस विघटन के बाद संसार में एक ही महाशक्ति बची अमेरिका। स्वभाविक था कि पूरी दुनिया अब अमेरिकी नीतियों के अनुसार चलती। इस प्रभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था भी आ गया। देश की आजादी के समय विश्व द्विध्रुवीय था और प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इन दोनों ध्रुवों के बीच संतुलन बनाते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया। साम्यवादी विचारों से पं. नेहरू के प्रभावित होने के कारण इस अर्थव्यवस्था का झुकाव सार्वजनिक क्षेत्र की तरफ रहा। आगे चल कर इंदिरा जी के कार्यकाल में बैंकों, एयरलाइंस इत्यादि के सरकारीकरण के साथ इसमें और बढ़ोत्तरी हुई जिसका विरोध वर्त्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में तत्कालीन जनसंघ ने किया था। बाद में

Scanned with OKEN Scanner

श्री चंद्रशेखर की सरकार के सामने भुगतान संकट आया और सोना गिरवी रखने की परिस्थिति सामने आई। इसके बाद की कांग्रेस सरकार ने (प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव, वित्तमंत्री मनमोहन सिंह) अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष की नीतियों पर चलकर देश में ज्यादा रोजगार, गरीबी उन्मूलन, औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास के नाम पर उदारीकरण का रास्ता पकड़ लिया। उदारीकरण या निजीकरण या वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को 'संगरचनात्मक समाधान' कहा गया।

इस संगरचनात्मक समाधान के अंतर्गत उठाए जाने वाले कदमों में प्रमुख हैं – बेरोक टोक आयात, उत्पादन एवं मूल्यों पर से सरकारी नियंत्रण हटाना, अनाजों के व्यापार के लिए खुला बाजार, कृषि सब्सिडी को समाप्त करना, सार्वजनिक निवेश की भूमिका को कम करना, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इच्छानुसार निवेश की आजादी और वित्तीय उदारीकरण। इसके साथ ही सरकार के कुछ घोषणाएँ भी की थीं कि केवल उन्हीं सार्वजनिक उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपा जाएगा जो घाटे में हैं लेकिन अब हो ठीक उल्टा रहा है। अब तक दो महत्वपूर्ण सार्वजनिक उपक्रमों का पूर्ण निजीकरण किया गया है, मॉडर्न फूड एवं बाल्को। ये दोनों कंपनियाँ लाभकारी उपक्रम थे। मॉडर्न फूड की बिक्री के बाद की स्थिति जनता के सामने है। उसके कर्मचारियों के साथ नए प्रबंधन द्वारा किए जा रहे व्यवहार पर भी बहुत कुछ लिखा और कहा गया है लेकिन सरकार इस मुद्दे पर चुप्पी साधे हुए बैठी है। उसे आम जनता की कठिनाइयों से मतलब नहीं है। उसका लक्ष्य है निर्धारित रास्ते पर रहना। विभिन्न विपक्षी पार्टियाँ भी उदारीकरण के मुद्दे पर चुप हैं, क्योंकि पार्टियाँ पैसे से चलती हैं और चन्दा बड़ी निजी कंपनियाँ देती हैं।

अब एक दशक पूरा हो चुका है जब १९९१ में ये रणनीतियाँ तय की गई थीं। यह वह समय है जब हमें इसके परिणामों की समीक्षा कर भविष्य के लिए कदम उठाने होंगे और नई योजनाएँ बनानी होंगी।

उदारीकरण के एक और पहलू के रूप में 'एनरॉन' का मुद्दा सामने आया है जो केवल अपना हित देखता है, चाहे वह भारत में हो या कैलीफोर्निया में। उदारीकरण का एक भयावह रूप हमें एनरॉन दिखाता है तो साथ ही अमेरिकी सरकार के बयानों से भी यह साफ लगता है कि इस खुली अर्थव्यवस्था कही जाने वाली व्यवस्था में राजनीतिज्ञ पूर्णतः कंपनियों के एजेण्ट के रूप में कार्य करते हैं। यह स्थिति राष्ट्रहित के लिए घातक है।

उदारीकरण के कारण देश पर ऋण का बोझ बढ़ता जा रहा है आज हर पैदा होने वाला बच्चा लगभग १००० रुपए के कर्ज के साथ पैदा होता है।

इसके साथ ही देश में रोजगार के अवसरों में भारी कमी हुई है। ८० के दशक में प्रतिवर्ष ५.४% रोजगार विकास की दर थी वह २००० में घटकर ०.८% प्रतिवर्ष हुई और अब २००१ में इसके नकारात्मक होने की उम्मीद है। कंपनियों में बड़े पैमाने पर छंटनी जारी है और सरकारी नौकरियों में कटौती की जा रही है तथा वी.आर.एस. लागू किया जा रहा है। उदारीकरण के पक्षधरों द्वारा इसके पक्ष में दिए गए विस्तृत तर्कों की यहाँ व्याख्या करना तो संभव नहीं है लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि इन नीतियों को लागू करते समय क्या-क्या आशाएँ की गई थीं। कहा गया था कि उदारीकरण की नीतियों से भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ेगी, औद्योगिक निर्यात में बहुत वृद्धि होगी, निवेश की दर बढ़ेगी, भारतीय जनता के जीवनस्तर में विशेष सुधार होगा जिसमें गरीबी की समस्या का समाधान हो जाएगा, रोजगार में तेजी से वृद्धि होगी। अब एक दशक पूरा हो चुका है जब १९९१ में ये रणनीतियाँ तय की गई थीं। यह वह समय है जब हमें इसके परिणामों की समीक्षा कर भविष्य के लिए कदम उठाने होंगे और नई योजनाएँ बनानी होंगी।

भारत में उदारीकरण के समर्थकों का कहना है कि सकल घरेलू उत्पाद में तीव्र बढ़ोत्तरी हुई है। लेकिन वे इस घोषणा के दौरान यह भुला देते हैं कि इतनी बढ़ोत्तरी दिखाने में आँकड़ों के खेल का चमत्कार है। इन आँकड़ों के खेल को खेलने के लिए आधार वर्षों में बार-बार परिवर्तन किया गया। १९८० के दशक के ५.५% के विकास दर की तुलना में २०००-०१ में यह ६% के आस-पास रहा। आधार वर्ष में परिवर्तन के बावजूद केवल ०.५% का अंतर यह बताने के लिए काफी है कि अगर आधारवर्ष में परिवर्तन न हुआ होता तो यह सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर कहाँ होती।

इतना ही नहीं अगर हम विभिन्न क्षेत्रों के अलग-अलग विकास दरों को देखें तो उदारीकरण की पूरी तस्वीर हमारे सामने होगी। इसमें सबसे चिंताजनक स्थिति कृषि की है। जिसमें खाद्यान्नों के उत्पादन की विकास दर तीव्रता के साथ कम हुई है। बहुत लम्बे समय तक देश में खाद्यान्न उत्पादन की विकास दर २.५% बनी रही जो जनसंख्या वृद्धि दर से थोड़ी ज्यादा रही। यहाँ तक कि १९८८-८९ से १९९०-९१ (इन दोनों वर्षों के साथ जो

कृषि के लिए बहुत अच्छे वर्ष थे) तक के १२ वर्षों में प्रतिवर्ष खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि दर २.४% रही जो इसी समयान्तराल की जनसंख्या वृद्धि दर से ज्यादा है। जबकि १९९०-९१ से १९९८-९८ (दो वर्षों को मिलाकर) खाद्यान्न उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर १.२% रही जो जनसंख्या वृद्धि दर से बहुत कम है। १९९८-९९ में खाद्यान्नों का कुल उत्पादन २,०३० लाख टन रहा जो १९९९-२००० में घटकर २,०१६ लाख टन हो गया अर्थात् इस अवधि में खाद्यान्न उत्पादन में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई। इसी अवधि में सरकारी खरीद में भी कमी आई है। १९९८-९९ में सरकार ने २३६ लाख टन खाद्यान्नों की खरीद की थी जबकि यह खरीद १९९८ में घटकर १९५ लाख टन हो गयी। १९९१ में भी सरकार ने १९९८ की अपेक्षा कुछ ज्यादा १९६ लाख टन खरीद की थी।

खाद्यान्न उत्पादन की ऋणात्मक वृद्धि दर भविष्य में बहुत बड़े खाद्यान्न संकट की तरफ इशारा कर रहा है। खाद्यान्न उत्पादन में कमी के बावजूद सरकारी भंडारों में भरे अनाज यह दिखाते हैं कि कामगारों विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की खरीद क्षमता में वास्तविक वृद्धि नहीं के बराबर है। इसका मुख्य कारण सरकार द्वारा संगरचनात्मक सुधारों एवं वित्तीय सुधारों के नाम पर सब्सिडी में की जा रही कटौती एवं कृषि क्षेत्र की उपेक्षा है। सब्सिडी में कमी के कारण जन वितरण प्रणाली के अंतर्गत खाद्यान्नों के मूल्य में वृद्धि हुई है। इससे लोगों में खरीद का उत्साह घटा है और सरकार के सामने ज्यादा भंडारण की समस्या भी आयी है। जन वितरण प्रणाली के माध्यम १९९९-२००० में केवल ५ मिलियन टन गेहूँ का वितरण हुआ जबकि १९९८-९९ में यह वितरण ८.९ मिलियन टन था। यद्यपि भारतीय खाद्य निगम ने खुली बाजार की बिक्री से ४.४ मिलियन टन गेहूँ और बेचा लेकिन इस वर्ष (१९९९-००) बिके ९.४ मिलियन टन गेहूँ पिछले वर्षों की तुलना में बहुत कम है। यह मात्रा २००० में और कम हो गयी। भारतीय खाद्य निगम अप्रैल से जून के बीच केवल ०.८२ मिलियन टन गेहूँ ही जन वितरण प्रणाली और खुले बाजार व्यवस्था द्वारा बेच सका। पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष की बिक्री में ४२% की गिरावट आयी।

इस कम बिक्री का कारण केंद्रीय निर्गमन मूल्य में वृद्धि है गेहूँ के लिए जनवितरण प्रणाली के अंतर्गत गरीबी

उदारीकरण के दस वर्षों की आर्थिक स्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि इनमें मंदी वाले वर्ष ज्यादा रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मंदी' एक वैश्विक तथ्य है जो 'स्थायित्व' की स्थिति नहीं है। इस 'उदारीकृत' अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक निवेश में कमी आयी है और आयात को खोलने के बाद भी माँग में गिरावट आयी है।

रेखा से ऊपर के लोगों के प्रति क्विंटल मूल्य ४५० रुपए से ६८२ रुपए, फरवरी से अप्रैल १९९९ के बीच बढ़ा दिया गया जो वृद्धि ५०% से भी अधिक है। यह सब सब्सिडी कम करने के नाम पर हुआ। लेकिन इससे सब्सिडी पर होने वाला खर्च कम नहीं हुआ बल्कि और बढ़ गया क्योंकि मूल्य बढ़ने से बिक्री कम हुयी और भारतीय खाद्य निगम पर भंडारण का बोझ बढ़ गया। इस बोझ को कम करने के लिए सरकार को भारतीय खाद्य निगम को सब्सिडी देनी पड़ी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित इस सुधार कार्यक्रमों के लिए कहा गया कि आरंभ में अर्थव्यवस्था पर इसका थोड़ा ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा लेकिन जब संक्रमण काल समाप्त हो जाएगा तब कुछ दिनों बाद अर्थव्यवस्था बहुत तीव्र गति के साथ आगे बढ़ेगी। कहने का मतलब यह था कि अर्थव्यवस्था के गति पकड़ने से पहले की मंदी से चिंतित नहीं होना चाहिए। भारत के लिए ये दो स्थितियाँ १९९०-९१ से ९३-९४ तक जब अर्थव्यवस्था स्थिर रही है। १९९३-९४ से अब तक जब अर्थव्यवस्था में तेज गति से वृद्धि हुई है (उदारीकरण के समर्थकों के अनुसार) के रूप में देखा जा सकता है।

यह अब साफ है कि यह रिकवी एक अस्थाई फिनोमेना का परिणाम है, १९९३-९९ में वित्तीय घाटे के बढ़ने और उसके बाद कम होने के बाद भी उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध नहीं है इसके बदले बाजार केवल विलासिता की वस्तुओं से पटा पड़ा है।

भारत की उदारीकरण की नीतियों के परिणाम उद्योग जगत पर भी दिखाई दे रहा है। उद्योगों का प्रदर्शन १९९८-९८, ९८-९९ एवं ९९-०० में बहुत बुरा रहा है। इसके परिणामस्वरूप ८५-८६ से ९०-९१ के बीच के औसत वार्षिक विकास दर ८.४% की तुलना में यह दर १९९१-९२ से ९८-९९ तक औसतन घटकर ५.८% हो गयी। अर्थात् औद्योगिक प्रदर्शन १९९३-९४ से ९५-९६ तक बढ़ने के बाद एक बार फिर कम हो गया और ९९-०० में ठीक-ठाक रहने के बाद इसकी स्थिति पुनः सुस्त हो गयी है। उदारीकरण के दस वर्षों की आर्थिक स्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि इनमें मंदी वाले वर्ष ज्यादा रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मंदी' एक वैश्विक

थ्य है जो 'स्थायित्व' की स्थिति नहीं है। इस 'उदारीकृत' अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक निवेश में कमी आयी है और आयात को खोलने के बाद भी माँग में गिरावट आयी है।

इस कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकासदर में आयी कमी को हम किसानों की स्थिति देखकर समझ सकते हैं। किसानों की स्थिति बिगड़ने का असर सार्वजनिक या जन निवेश पर भी पड़ा है। १९८०-८१ के मूल्यों पर सकल पूँजी निर्माण १९८०-८१ में कृषि क्षेत्र में १७९६० मिलियन था जो १९९० में कम हो गया। इसे बढ़ाने का कोई भी प्रयास सरकार ने नहीं किया।

वास्तव में कृषि क्षेत्र में पूँजी ह्रास कुल निवेश को भी प्रभावित कर रहा है। सुधारों के दौरान सरकारी घोषणाओं के जरिए घोषित लक्ष्य पाने में सरकार विफल रही है चाहे वह विभिन्न क्षेत्रों में वास्तविक निवेश की बात हो या प्रतिवर्ष अर्थव्यवस्था विकास दर की। निवेश की यह मंद चाल आश्चर्यचकित करने वाला नहीं है। नव उदारवाद की नीतियाँ जिसमें यह कहा जाता है कि धनाढ्यों को छूट देने पर वे निवेश करेंगे पूर्णतः कपोल-कल्पना है। वास्तव में निवेश के लिए विशेष प्रोत्साहन आवश्यक है और पहले यह प्रोत्साहन जनता के निवेश या सार्वजनिक निवेश से प्राप्त होता था। इसका निजी निवेश पर भी धनात्मक प्रभाव पड़ता है। एक 'उदारीकृत अर्थव्यवस्था' में प्रोत्साहन का अभाव होता है। उदारीकरण के प्रभावस्वरूप उच्च ब्याज दरों में कटौती होती है और घरेलू उत्पादकों के बाजार का हिस्सा खुले आयात की वजह से समाप्त हो जाता है। हाँ निर्यात बढ़ने से निवेश को प्रोत्साहन मिल सकता है लेकिन तभी जब निर्यात बनी-बनायी वस्तुओं का हो न कि प्राथमिक वस्तुओं का, लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं बड़े उद्योगों द्वारा घरेलू बाजार पर ध्यान देने के कारण निर्यात भी कमजोर हुआ है। १९९० के बाद से भारतीय निर्यात अंतरराष्ट्रीय निर्यात की अपेक्षा बहुत कम रहा है और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भारत का कुल हिस्सा भी कम हुआ है।

वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुयी है और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी में वृद्धि हुई है। यह अब माना जाने लगा है कि १९८० एवं ८० के दौरान गरीबी हटाने की प्रक्रिया को १९९० में धक्का लगा है। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी

सरकारों के इतने हो हल्ले एवं १० से २० बिलियन प्रतिवर्ष विदेशी निवेश की जगह बमुश्किल ३ बिलियन प्रतिवर्ष विदेशी निवेश हो रहा है। इस निवेश के बावजूद प्रतिवर्ष नौकरियों में कटोती कर बेरोजगारी बढ़ाई जा रही है। यह निवेश भी मुख्यतः घरेलू बाजार पर कब्जा करने और भारतीय उद्योगों को समाप्त करने की दिशा में हो रहा है।

१९८२-८३ के ५५.४% से घटकर १९८९-९० में ३४.४% हो गयी और राष्ट्रीय स्तर पर इसी दौरान गरीबी में ५४.३% से ३४.१% हो गया। १९९० के दशक में एन.एस.एस. के आँकड़ों के अनुसार औसतन गरीबी ३८% रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी बढ़ने का एक प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में कॉस्ट ऑफ लिविंग में बढ़ोत्तरी और कृषि उपजों के न्यूनतम समर्थन मूल्य का अधिकतम बिक्री मूल्य में बदल जाना है। इस स्थिति में आने का प्रमुख कारण वित्तीय घाटे को कम करने के नाम पर सरकार द्वारा ही जाने वाली सब्सिडी में की जा रही कटौती है। इस प्रक्रिया में सबसे ज्यादा प्रभाव कृषि क्षेत्र एवं कृषि उपजों पर पड़ा है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में कामगारों की स्थिति बेहतर हुयी है जबकि कृषकों की स्थिति खराब होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी बढ़ने का एक और महत्वपूर्ण कारण सरकारी नीतियों के कारण बढ़ती हुयी बेरोजगारी है। इसके साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद एवं कृषि क्षेत्र के उत्पाद का अनुपात घटता जा रहा है। कृषकों को कृषि उत्पादों के लिए मूल्य कम मिलता है, रुपए का अवमूल्यन होता जा रहा है और अन्य सभी वस्तुओं का मूल्य बढ़ता जा रहा है।

अंततः 'संरचनात्मक समाधान' के इस दौर में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ने के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बुलाने का आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। ये कंपनियाँ देश के विकास के लिए सर्वाधिक आवश्यक 'आधारभूत संरनचना' के क्षेत्र में निवेश नहीं करती हैं बल्कि अपने अधिकाधिक लाभ के लिए अपने यहाँ बने वस्तुओं से भारतीय बाजार को भर देती हैं, यहाँ के लाभकारी घरेलू उपक्रमों पर काबिज होती है। सरकारों के इतने हो हल्ले एवं १० से २० बिलियन प्रतिवर्ष विदेशी निवेश की जगह बमुश्किल ३ बिलियन प्रतिवर्ष विदेशी निवेश हो रहा है। इस निवेश के बावजूद प्रतिवर्ष नौकरियों में कटोती कर बेरोजगारी बढ़ाई जा रही है। यह निवेश भी मुख्यतः घरेलू बाजार पर कब्जा करने और भारतीय उद्योगों को समाप्त करने की दिशा में हो रहा है। जिसका उदाहरण हम हर क्षेत्र में देख सकते हैं। भारतीय पेय कंपनी लहर-पेप्सी के हाथ में हैं, मोटर बाइक कंपनी एस्कार्ट्स यामाहा के हाथ में चली गयी, मॉडर्न फूड हिन्दुस्तान लीवर

Scanned with OKEN Scanner

लिमिटेड ने खरीद लिया। यह निवेश अगर निर्यात करने वाले वस्तुओं के क्षेत्र में होता तो इससे गरीबी एवं बेरोजगारी दोनों से लड़ने में सहायता मिलती। रोजगार एवं गरीबी एक दूसरे से संबंधित हैं। रोजगार बढ़ने से गरीबी घटती है, अपराध घटता है। निवेश करने वाली कंपनियाँ, भारतीय कंपनियों को खरीदने के बाद अलग-अलग बहाने बना छँटनी शुरु कर देती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'मॉडर्न फूड' है।

उदारीकरण के समर्थकों का कहना है कि उदारीकरण के वजह से भारत का विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ा है। लेकिन वे यह नहीं बताते कि विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ने में बहुत बड़ा योगदान विदेशी कर्जे का है। लेकिन विदेशी कर्जे से बढ़ने वाले इस मुद्रा भंडार के कारण देश पर विश्व बैंक एवं मुद्रा कोष का दबाव बनता है और उनके दबाव के कारण देश के उपभोक्ता वस्तु बाजार एवं कृषि क्षेत्र को अंतरराष्ट्रीय उत्पादकों के लिए खोलना पड़ा है। विश्व बैंक एवं मुद्राकोष इतना मुद्रा भंडार होने के कारण इन क्षेत्रों को पूर्णतः खोल देने का दबाव डालते हैं। सरकार के इन नीतियों पर चलने के कारण उपभोक्ता वस्तुओं का आयात खोल दिया गया है इसका असर देशी उत्पादकों पर पड़ रहा है। देश का विदेशी मुद्रा भंडार इस कारण धीरे-धीरे कम होता जाएगा और देशी धन विदेशी हाथों में पहुँच जाएगा। देश के नीति निर्धारक न तो पूर्वी एशिया के आर्थिक संकट से न ही मैक्सिको के आर्थिक संकट से सबक लेने के लिए तैयार हैं। देश की वर्त्तमान बड़ी स्तर पर कम समय के कर्ज लेने की नीतियाँ औद्योगिक ह्रास को बढ़ावा दे रहा है।

उदारीकरण के पिछले दस वर्षों में देश में औसतन गरीबी बढ़ी है, बेरोजगारी बढ़ी है, कृषि उत्पादन में कमी आयी है, औद्योगिक उत्पादन गिरा है, विदेशी कर्ज बढ़ा है, भ्रष्टाचार में बढ़ोत्तरी हुई है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे विदेशी हाथों में पहुँचती जा रही है। सरकार जिसे 'रुल गवर्न' प्रणाली कहती है वह मुख्यतः बाजार के नियम हैं। निजीकरण कई देशों में व्यापक बहस का मुद्दा बन रहा है जहाँ निजी कंपनियाँ वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों को शोषण कर रहे हैं जैसे नाइजीरिया के तेल क्षेत्र, दक्षिण अफ्रीका के हीरा खदान या फिर बंगलादेश के पेट्रो उत्पादन के क्षेत्र। भारत में ही जैसे एनरॉन का समझौता हुआ

हमारी तरक्की कैसे होगी यह हम अपने से तय करेंगे, किसी बाहरी शक्ति के निर्देशों से नहीं। भारतीय उद्योगों को विघटित करने वाला ऐसा कोई भी कार्यक्रम एकबारगी खारिज कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि इससे हमारे उपभोक्ता और मजदूरों को ही भारी क्षति पहुँचेगी।

जिस पर इस समय पूरे विश्व की नजरें है और अमेरिकी प्रशासन तक भारत पर दबाव बना रहा है इसी निजीकरण की उपज है।

निजीकरण के इस स्वरूप को वर्त्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने १९९३ में श्री नरसिम्हा राव सरकार की आर्थिक नीतियों का विरोध करते हुए निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया था और साथ ही इसका समाधान सुझाया था –

"बड़ी सजधज के साथ नरसिंह राव सरकार ने लगभग दो वर्ष पूर्व नयी आर्थिक व अन्य नीतियों की घोषणा की थी। लम्बे चौड़े वादों के साथ की गयी इस घोषणा में सरकार ने महंगाई कम करने, निर्यात बढ़ाने और भुगतान संतुलन दुरुस्त करने का वायदा किया था। मगर अब यह साफ दिखाई दे रहा है कि सरकार देश की डूबती अर्थव्यवस्था को उबारने में असफल रही है। हमने इतना ज्यादा कर्ज ले लिया है कि इसकी कोई सीमा नजर नहीं आती। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से हम लगातार ऋण लिए जा रहे हैं। सबसे पहले हमें अनाप-शनाप ऋण लेना बन्द करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय महा वित्तीय शक्तियाँ हमें लगातार ऋण दे रही हैं, तो उनकी नजर ऋण राशि के उपयोग और मुनाफे पर होगी। हमारी जरूरतें उनकी प्राथमिकताओं में कहीं नहीं होंगी। जाहिर है अपनी प्राथमिकतायें वह शर्तों या अन्य जरिये से पूरा करवाएंगी ही। सीमा शुल्क में कटौती के समय सरकार ने वायदा किया था कि इससे मूल्यों पर अंकुश लगेगा। मगर हुआ यह कि अधिसंख्य उत्पाद ऋणिक रूप से मूल्यों में कमी कर फिर लगातार वृद्धि कर रहे हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि देशी उद्योगों की मौत की कीमत पर हमें विदेशी कंपनियाँ नहीं चाहिए। हमारी तरक्की कैसे होगी यह हम अपने से तय करेंगे, किसी बाहरी शक्ति के निर्देशों से नहीं। भारतीय उद्योगों को विघटित करने वाला ऐसा कोई भी कार्यक्रम एकबारगी खारिज कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि इससे हमारे उपभोक्ता और मजदूरों को ही भारी क्षति पहुँचेगी। वाह्य उदारीकरण का कोई अर्थ नहीं।"

प्रधानमंत्री जी के इन विचारों की झलक में पुनः उसके दोहा वार्त्ता के विरोध में मिली। हम उम्मीद करे हैं कि सरकार कम से कम प्रधानमंत्री से सीख लेकर अपनी विघटनकारी नीतियों पर पूर्ण विराम लगाएगी। ■

Scanned with OKEN Scanner

इक्कीसवीं सदी का रावण

■ डॉ. अमित शर्मा

कभी हमारे यहाँ गुरुकुल होता था और रावण के यहाँ केवल गुरु था – शुक्राचार्य। आज रावण के यहाँ गुरुकुल है और हमारे यहाँ गुरु तो होते हैं, उनका वंश नहीं चलता। हमारे यहाँ केवल गृहस्थों के वंश चलते हैं, जैविक वंश चलते हैं, जबकि रावण के यहाँ बौद्धिक और आध्यात्मिक वंश चलता है........

जहाँ भी जीवन है वह अमृत के कारण है चाहे वह दशरथ पुत्र का जीवन हो या दशानन का जीवन। यदि संसार सनातन दृष्टि से एक 'लीला' है तो रावण की भूमिका भी किसी महत् उद्देश्य से ही लिखी गयी होगी। सामी दृष्टि में एक साथ दो साम्राज्य स्वीकार किए गए हैं – (१) ईश्वर का साम्राज्य, (२) शैतान का साम्राज्य। सनातनी परंपरा में अद्वैत है। एक ही साम्राज्य है – धर्म का साम्राज्य। धर्म वह है जो धारण करता है, जो आधार है जीवन का, अस्तित्व का, अमृत का। हम जानते हैं रावण की नाभि में अमृत है। जब तक नाभी में तीर नहीं मारा जाता 'रावण' नहीं मरेगा।

हमें भी समझना होगा कि २१वीं शताब्दी का रावण कौन है। अमेरिका नहीं है वह रावण। न विश्व मुद्रा कोष या विश्व बैंक ही है। यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को हम रावण समझते हैं तो यह भी हमारा भोलापन है। गाँधी इसको समझते थे। परमहंस रामकृष्ण, श्रीअरविन्द समझते थे। बुद्ध समझते थे पर . . . लेकिन हजार बरस की गुलामी ने हमें मानसिक रूप से वहाँ ले जाकर छोड़ा है जहाँ हम अपने पुरखों की पूजा तो करते हैं पर उनसे प्रेरणा नहीं ले सकते। हम उनसे अपनापन तो महसूसते हैं पर उनके प्रयोगों का महत्व नहीं समझते।

परमहंस रामकृष्ण, गाँधी, अरविन्द, रामानुज, गोरख, नागार्जुन या बुद्ध कलियुगी सनातनता के प्रेरणा पुंज हैं। इनके आलोक में हमें नहीं लगता कि पश्चिम से हमें ज्ञान, विज्ञान या आधुनिकता सीखने की जरूरत है। सनातन परम्परा पुरानी कब पड़ती है? सनातन परंपरा मर तो सकती है पर पुरानी नहीं पड़ती, यह पुनर्नवा जो है।

रामायण और महाभारत प्रतीक शास्त्र हैं ये ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं। सनातन परंपरा में कालजयी शास्त्रों की ही रचना होती है। शास्त्रों की भाषा प्रतीकों की कूट भाषा होती है। इसको पढ़ने की कला और तकनीक गुरु-शिष्य परम्परा को संस्थानिक आधार देता है।

हम रावण से क्यों हारते हैं? रावण कौन है? वह कैसे मरेगा? ये सनातन प्रश्न हैं। पर इसके सनातन उत्तर हम भूल चुके हैं। इसका ऐतिहासिक उत्तर भी हम नहीं देते। हम मानते हैं कि रावण अब भी शुक्रनीति पढ़ता है जबकि बृहस्पति राजधर्म सूत्र हमारे लिए पुरातात्विक महत्व की चीज है। हम मानते हैं कि चाणक्य के अर्थशास्त्र से हमारा काम चल जाएगा अब भी चल जाएगा पर हम यह जानने की कोशिश नहीं करते कि रावण आजकल कौन-सा शास्त्र पढ़ता है और क्या सचमुच बृहस्पति के राजधर्म सूत्र की तुलना में चाणक्य का अर्थशास्त्र हमारे युग के ज्यादा अनुकूल है? एक तरफ हम मानते हैं कि राम ने विभीषण, हनुमान, सुग्रीवादि के बल पर, उनकी सहायता से रावण को हराया था दूसरी तरफ हम स्वदेशी की बात करते हैं? क्या विभीषण स्वदेशी था? स्वदेशी में 'स्व' प्रमुख है या 'देश'? राष्ट्र का अर्थ क्या सचमुच नेशन होता है या सिविलाइजेशन होता है? इन मूल प्रश्नों का उत्तर कैसे दिया जाता है हमारे यहाँ और कैसे दिया जाता है रावण के यहाँ?

कभी हमारे यहाँ गुरुकुल होता था और रावण के यहाँ केवल गुरु था, शुक्राचार्य। आज रावण के यहाँ गुरुकुल है और हमारे यहाँ गुरु तो होते हैं, उनका वंश नहीं चलता। हमारे यहाँ केवल गृहस्थों के वंश चलते हैं, जैविक वंश चलते हैं, जबकि रावण के यहाँ बौद्धिक और आध्यात्मिक वंश चलता है गुरुकुलों में। एक युग में केंद्र में एक ही गुरु या एक ही राज्य या एक ही गुरुकुल होता है। जब तक हमारे यहाँ नालंदा बौद्ध गुरुकुल नहीं हुआ था वह सनातन परंपरा का केंद्र था। फिर नालंदा बौद्ध गुरुकुल हो गया और तक्षशिला सनातन गुरुकुल बना रहा। चाणक्य तक्षशिला गुरुकुल को मगध में स्थानांतरित करना चाहते थे। धनानंद तैयार नहीं हुआ। चाणक्य ने नंद साम्राज्य के बदले मौर्य साम्राज्य की नींव डाली। पर गुरुकुल स्थानांतरित नहीं हुआ। साम्राज्य बनाना आसान होता है गुरुकुल बनाना बहुत मुश्किल काम है। इतिहास लिखना आसान होता है

Scanned with OKEN Scanner

प्रतीकात्मक पुराण लिखना मुश्किल काम होता है।

तक्षशिला तो नष्ट हो गया पर वहाँ की किताबें कहाँ गयीं? लोकश्रुति है कि अरस्तु अपने साथ किताबें ले गया। उसकी नाव किताबों से इतनी भर गयी थी कि डूबने लगी। अरस्तु ने कहा किताबें जाना जरूरी है ऐसा करता हूँ मैं ही डूब जाता हूँ ताकि मेरे शरीर के वजन जितना किताबें सुरक्षित एथेंस पहुँच जाएंगी। सैनिकों ने प्रेरणा ली और ८ सैनिकों ने किताबों की रक्षा के लिए सिंधु में छलांग लगा दिया। एथेंस में किताबें पहुँची और अरस्तु पहुँचा पर विश्व विजय करने का स्वप्न देखने वाला सिकन्दर वापस नहीं पहुँचा। रास्ते में ही जल कर उसकी मृत्यु हो गयी। राजा मर गया पर राजगुरु (अरस्तु) और सेनापति (सेल्युकश) जिंदा रहा। सेनापति बदलते रहे। सेनाएँ बदलती रहीं। साम्राज्य बनते और बिगड़ते रहे। पर गुरुकुल चलता रहा। अरस्तु के बाद रावण के यहाँ गुरु का महत्व गौण हो गया। गुरुकुल रूपि संस्था का महत्व बढ़ गया। संस्थाएँ सनातनता का बोध कराने लगीं, गुरु क्षणभंगुर चमत्कार के वाचक हो गए और रावण जीतता रहा। हम सभी सनातन परंपरा के भग्नावशेष हारते रहे। एथेंस के बाद रोम, फ्लोरेंस, कैंब्रिज/ऑक्सफोर्ड – अब हावर्ड बिजनेस स्कूल . . . . रावण की आत्मा – अमृत-कलश – गुरुकुल – शब्द ब्रह्म का रूपांतरण स्थानांतरण होता रहा – पुनर्नवता बनी रही और वे उसी सनातन धर्म से जीतते रहे जिससे कभी हम जीतते थे। यह मत भूलिये वे हमारे सौतेले भाई हैं। खून का रिश्ता है हमारे बीच। एक ही पिता (कश्यप) की संतानें हैं हम सब। केवल माताएँ (दिति, दनु, अदिति) अलग हैं। विरासत में साझा अधिकार था हमारा। हमने दावा छोड़ दिया उसने नहीं छोड़ा। हमने निहत्थे, युद्ध न करने के शपथ से बंधे कृष्ण को पूजा की वस्तु बना लिया और दुर्योधन से प्रेरणा लेकर यादवी सेना (संगठन) बनाने की जुगत करते रहे आंदोलन पर आंदोलन करते रहे। अब कृष्ण भी क्या करें? जो लोग व्याकरण भूल कर शब्दों और वाक्यों को मारने के लिए सेना और संगठन बनाते चलते हैं, आंदोलन करते फिरते हैं, उनके द्वारा पूजे जाने पर कृष्ण की क्या हालत होती होगी?

ऐसा नहीं था कि तक्षशिला के ध्वंस के बाद हमारे यहाँ गुरुकुल नहीं था। पर हमने नालंदा को बौद्ध संस्था मानकर उसे असनातन मान लिया। बुद्ध को वैष्णवों ने नवें अवतार मानकर पूजना शुरू कर दिया पर बौद्ध संस्थाएँ सामाजिक प्रेरणा के बदले सामाजिक उपहास की चीज बनी रहीं। धीरे-धीरे समाज दो भागों में बंट गया। समाज के जिस हिस्से को बौद्ध संस्थाओं से प्रेरणा मिलती रही वे इस्लाम के आक्रमण तक उर्धवान बनी रहीं। पर इस्लाम के आने के बाद बौद्ध संस्थाएँ दोहरे दबाव में दम तोड़ने लगीं।

रावण हमारे समाज के अंदर है। हमारी चेतना के अंदर है। हमें रावण ने जीता नहीं है हमने उसे अतिथि का सम्मान दिया है। उसकी लंका की चमक-दमक ने हमें लालची बनाया है। हम भी अपने समाज को लंका बनाना चाहते हैं। हम भी लंकेश बनना चाहते हैं। यह चाहत स्वभाविक नहीं है। यह हार्वर्ड बिजनेश स्कूल द्वारा फैलाया गया भ्रमजाल है। यही रावण की शक्ति का आधार है। यही उसकी नाभी का अमृत है। जब तक यह चाहत हममें कायम है रावण नहीं मरेगा चाहे एनरॉन को मार लो या केंटुकी चिकेन को, कोकाकोला को मार लो या मैकडोनॉल्ड को।

रावण तब तक जिन्दा रहेगा जब तक हार्वर्ड बिजनेश स्कूल जिन्दा है। उसका भ्रमजाल जिन्दा है, इस भ्रमजाल के शिकार लोग जिन्दा हैं, हमारे बीच जिन्दा हैं।

उसको मारना संभव है। उसके लिए संकल्प लेना होगा। प्रायश्चित करना होगा। बलिदान देना होगा। अपनी खोयी विरासत को पाने के लिए नयी स्मृति, नया व्याकरण और नया गुरुकुल चलाना होगा। ■

अब वे वंशाणु से लड़ रहे हैं आर्य विरोधी लड़ाई

■ डॉ. प्रमोद कुमार दुबे

यूरोप के लोगों के मानसिक विकास के गणित, ज्यामिति, खगोल, दर्शन आदि के प्रारंभिक आधार की तरह ही कायिक रचना में भी भारतीयों के वंशाणु प्रवेश किए होंगे। संभव है उन्हें आज के वंशाणुविद् पा रहे हों और उन्हें लग रहा हो कि सभ्यता का प्रवाह यूरोप से भारत की ओर हुआ जबकि वास्तविकता जग जाहिर है कि सभ्यता भारत भूमि से बाकी विश्व के लोगों की ओर प्रवाहित हुई थी।

अर्थ और राज्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु बौद्धिक क्षेत्र में भी भारत की सनातन अस्मिता को पराधीन करने के अनेक प्रयास विदेशी आक्रमणकारियों ने किए। अंग्रेजों का एक रोचक उदाहरण देखें, बंगाल में कृष्ण को कृस्टो कहने का प्रचलन देख अंग्रेजों ने कृस्टो की संगति क्राइस्ट से बैठा दी और कहा, क्राइस्ट ही कृष्ण हैं। इसके बाद कई समानताओं की खोज की गई। आज भी ईसाई हिन्दुओं को प्रभावित करने के लिए यह बताते हैं कि कृष्ण और क्राइस्ट एक ही हैं, कृष्ण चले जाते हैं तब क्राइस्ट आते हैं, क्राइस्ट चले जाते हैं तब कृष्ण आते हैं। गाँव का निपट विश्वासी व्यक्ति इन इसाईयों के झाँसे में फँस जाता है।

हिन्दुओं की समाज व्यवस्था में अब धार्मिक कार्य करने वाले सुयोग्य पुरोहितों का नितांत अभाव हो चुका है और दूसरी ओर इसाईयत के प्रचारकों की संख्या दिन-दुनी बढ़ती जा रही है इसी तरह इस्लामी ताकतें भी अपना पाँव फैलाने में लगी हैं। इनके दुष्प्रभावों से अब देश अपरिचित भी नहीं है। ये ताकतें पहले आर्थिक क्षमता से विभिन्न रूपों में विभाजित हिन्दू समाज को अपने प्रभाव में घेरती हैं। फिर धर्मान्तरित करती हैं, अपनी संख्या बढ़ाती हैं, चुनावी ढाँचे पर कब्जा करती हैं, ताकत बढ़ा लेने के बाद अन्य लोगों पर अत्याचार करती हैं उन्हें विस्थापित कर अलग राज्य की माँग करने लगती हैं। बौद्धिक आधार को तोड़ने के लिए शिक्षा का उपयोग इनका कारगर हथियार है। सैकड़ों वर्ष से दुनिया में उपनिवेश बनाकर लूटी गई सम्पत्ति की नींव पर खड़ी आज की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ की अकूत कमाई इनके पीछे है।

आधुनिक विज्ञान के उद्भव के काल में पादरियों की चर्च-शक्ति जब वैज्ञानिकों के दमन में लगी कोपर्निकस, ब्रूनो, गैलेलियो जैसे अन्वेषक इनके चपेट में आए तब कम्युनिस्टों ने वैज्ञानिकों का पक्ष लिया था और चर्चों का विरोध किया था। कम्युनिस्टों ने स्वयं को वैज्ञानिक विचार-वाद का दावेदार बताया और रिलिजन को 'मार्फिया' कहा। यह विरोध पश्चिमी देशों के संदर्भ में उचित था। चूँकि वैज्ञानिकों की खोजें ईसाई विचारों के पिछड़ेपन को सिद्ध कर उन्हें नकार रही थीं और इससे पादरियों का चर्च-राज्य खोखला हो रहा था, पादरी अपने चर्च-राज्य की रक्षा के लिए वैज्ञानिकों को सजा देने पर तुले हुए थे। दूसरी ओर कम्युनिस्टों को अपने साम्राज्य की स्थापना करनी थी, उन्होंने वैज्ञानिकों का पक्ष लिया। लेकिन इतिहास देवता करवट भी बदलते हैं। कम्युनिस्ट साम्राज्य भी हमेशा वैज्ञानिकों के पक्ष में नहीं रहा और न इस नए विचार-वाद के लिए विश्व मानव का हित ही उनके लिए सर्वोपरि रहा। एक समय आया जब एक वैज्ञानिक ने कम्युनिस्ट साम्राज्य से अधिक विश्व की रक्षा को महत्व दे दिया। कम्युनिस्टों ने उसकी वैचारिक स्वतंत्रता को दमित किया, विश्व-रक्षा के संकल्प के बदले

उसे घोर यातनाएँ दी गईं। १२ अगस्त १९५३ ई० को कजाकिस्तान में बने एक टॉवर पर हाईड्रोजन बम का परीक्षण कर लेने के बाद जब रूसी वैज्ञानिक आंद्रेई सखारोव विश्व के ध्वंस को कल्पित कर सिरह उठा, उसने रूस के कम्युनिस्ट साम्राज्य के लिए बम बनाने से इन्कार कर दिया। उसे विश्व ध्वंसक हत्यारे

का इतिहास स्वीकार नहीं था, उसके सामने एक वैज्ञानिक की स्वतंत्र भूमिका और विश्व हित में कर्त्तव्यों की चुनौती थी। हिरोशिमा और नागासाकी में हुई प्रथम परमाणु बम के विस्फोट से हजारों निर्दोष लोगों की नृशंस हत्या का दृश्य साखारोव की स्मृति पटल पर छाया हुआ था। अल्वर्ट आइंस्टीन और अन्य वैज्ञानिकों के पश्चाताप के आँसू उसे भूले नहीं थे। उसने स्वयं को और अपने परिवार को कम्युनिस्ट साम्राज्यवादियों की कठोर यातना की आग में खड़ा कर दिया।

साम्राज्य किसी प्रकार का हो, किसी का हो वह दूसरों की स्वतंत्र क्षमताओं का अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उपयोग करना चाहता है इसे अस्वीकार करने पर यह शक्ति दमन की सीमा पार करती दिखाई देती है। यह तो केवल भारत के इतिहास का गौरव रहा है कि कोपर्निकस से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब आर्यभट्ट ने पृथ्वी केंद्रित खगोलीय सिद्धांत को सूर्य केंद्रित खगोलीय सिद्धांत देकर ध्वस्त किया, किंतु इसके बदले उन्हें कोई विरोध-यातना अथवा उपेक्षा नहीं, अपितु सम्मान मिला (यह हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है।) भारत में भी विकसित हुई ज्योतिषीय गणना का प्रारंभ पृथ्वी को स्थिर और सूर्य को गतिमान मानकर हुआ था। जिसका खंडन करके आर्यभट्ट का सूर्य सिद्धांत सर्वप्रतिष्ठित हुआ। आज के चिरकूट (चिराय कुटिलः इतिचिरकुटः) कम्युनिस्ट अध्येता और उनके सरीखे लोग जिन्हें भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा और इतिहास के विषय में जानने की आवश्यकता समझ में नहीं आती, उल्टे टॉलमी और कोपर्निकस का वृत्तांत रटते हैं। इस देश में कोपर्निकस के नाम पर रास्ते का नाम रखकर उसकी स्मृति पोख्ता बनाई जाती है। कम्युनिस्ट अपने इन पुरखों का जाप करते रहते हैं। मैं नहीं कहता यह कोई दुर्भाग्य है और खेदजनक प्रसंग है। वास्तव में यह मानसिक दासता का उदाहरण है। इस मोर्चे पर हमें लड़ाई लड़नी होगी इसके वावजूद कि हम साधनहीन और असंगठित हैं, हमारी विजय अवश्य होगी। इसमें बाधा बनने वाली आंतरिक शक्तियाँ हो या वाहरी शक्तियाँ उनका अंत सुनिश्चित है।

अंग्रेज साम्राज्यवादियों द्वारा अप्रमाणिक तथ्यों को भारतीय जनमानस पर थोपकर दासता पैदा करने के प्रयासों का विरोध डॉ. रामविलास शर्मा जैसे प्रगतिशील विद्वानों ने भी जमकर किया है। आर्य आक्रमणकारी थे अथवा भारत के मूल निवासी? इस प्रकार के प्रश्न अब अनुत्तरित नहीं रह गए हैं। अनेक अकाट्य प्रमाण सामने आ चुके है जिनके आधार पर यह कहना सरसर झूठ होगा कि आर्य कहीं बाहर से आए थे। इस क्षेत्र में सबसे प्रामाणिक कार्य पुरातत्ववेता मनीषी श्रीविष्णु श्रीधर वाकणकर का है। यह सुखद है कि राष्ट्रवादी और प्रगतिवादी दोनों खेमों के भारतीय विद्वान अँग्रेजों द्वारा उपनिवेशवादी मानसिकता से गढ़े गए आर्यों के आगमन सम्बंधी झूठे इतिहास के विरोधी हैं। डॉ. राम विलास शर्मा के पास गहरे अध्ययन और भाषा वैज्ञानिक तथ्यों का आधार है तो श्रीविष्णु श्रीधर वाकणकर के पास अंग्रेजों के षड्यंत्रकारी दस्तावेज, अंग्रेज षड्यंत्रकारियों से भेंट, विश्वभर में होने बाली इतिहास के विषयों पर संगोष्ठियों में सहभागिता, शस्त्रों का गहन अध्ययन और स्वयं पुरातत्वों की भारी मात्रा में खोज से मिले अकाट्य प्रमाणों का भंडार है। श्री वाकणकर ने इस कार्य में अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। उन्होंने मध्य प्रदेश में भीम बेटका की २० लाख वर्ष पुरानी ७६० गुफाओं और उनमें अंकित शैल चित्रों की खोज की थी, इनके आधार पर आर्यों की यज्ञ संस्था के प्रमाण एकत्र किए थे एवं इंग्लैण्ड, फ्राँस, जर्मनी, इटली, अमेरिका इत्यादि देशों में अपने सप्रमाण व्याख्यान देकर इतिहास संबंधी उपनिवेशवादी अंग्रेजों की भ्रांत धारणाओं का खंडन किया था। इनके खोजे हुए तथ्यों से जानकारी मिलती है कि बाहरी धरती से आर्यों के आगमन की षड्यंत्रकारी कल्पना ८ अप्रैल १८६६ ई० को रॉयल एशियाटिक सोसायटी की एक बैठक में की गई थी इस बैठक के अध्यक्ष थे विस्काउण्ट स्ट्राफोर्ड। आर्यों के विषय में सबसे पहले मिस्टर थॉमस ने अपना मनगढंत सिद्धांत दिया था। इस बैठक की कार्यवाही के दस्तावेजों का अध्ययन करने पर उक्त तथ्य सामने आया। इंस्टीच्यूट ऑफ टाइफोग्राफिकल रिसर्च, पुणे के अध्ययन कर्त्ताओं ने लिखा है कि रॉयल ऐशियाटिक सोसायटी लंदन के मिनट्स में निम्नलिखित उद्धरण प्रकाशित है, '८ अप्रैल १८६६ की रॉयल एशियाटिक सोसायटी की बैठक राइट आनरेबल विस्काउण्ट स्ट्रांफोर्ड की अध्यक्षता में मिस्टर थॉमस ने एकमात्र चर्चा का विषय आरंभ किया जो क्रम-४ के मुद्दे के रूप में रखा गया था। इसके द्वारा आर्यों के आगमन की धाराओं पर चर्चा की गई कि ये घुम्मकड़ आर्य समूह आक्सस नदी क्षेत्र में निकलकर सबसे पहले हिन्दूकुश की ओर तथा वहाँ से पंजाब की भूमि पर आया और अपने प्रारंभिक वैदिक गानों की रचना की, ब्राह्मणत्व की संस्था को प्रतिष्ठित किया एवं संस्कृत व्याकरण को तक्षशिला में प्रारंभ किया।' टाइफोग्राफिकल रिसर्च के अध्येता ने खेद पूर्वक लिखा है कि लोकमान्य तिलक एवं बाद के विभिन्न विद्वानों की दृष्टि रॉयल एशियाटिक सोसायटी के इस मिनट्स पर क्यों नहीं गई कि वे पाश्चात्य शिक्षकों और उनके षड्यंत्रों को नहीं समझ पाए।

अंग्रेजों के समय के भारतीय पुरातत्व विभाग के निदेशक मिस्टर मार्टीमन व्हीलर जब १९५६ में उज्जैन आए, उज्जैन के ग्राण्ड होटल में श्रीविष्णु श्रीधर वाकणकर से उनकी बातचीत हुई। श्री वाकणकर ने पूछा, 'क्या आप वैदिक संस्कृत या संस्कृति से परिचित हैं? ह्वीलर ने कहा, 'नहीं। क्यों?' यह बातचीत श्रीवाकणकर की एक पुस्तक में प्रकाशित है। इसे पढ़ने पर लग जाता है कि इन सफेद दिमागियों का उद्देश्य भारत पर कब्जा बनाए रखना था, न कि यहाँ के वास्तविक इतिहास से समाज को परिचित करवाना था।

इसी ह्वीलर के एक लेख 'हड़प्पा १९४६ प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था और कब्रिस्तान' में आर्यों को हड़प्पा सभ्यता का विध्वंसक और ऋग्वेद के इन्द्र को उनका नेता बताया गया है। इस विषय का उल्लेख करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि मोहनजोदड़ों में कुछ अस्थि पंजर मिले। मैकाय का विचार था, बलूचिस्तान के कबायलियों ने यहाँ नागरिकों की हत्या की थी। ह्वीलर ने कहा, वैदिक आर्यों ने जो हत्याकांड रचाया, ये अस्थिपंजर उसी का प्रमाण है। १९६४ में अमेरिकी पुरातत्वज्ञ जार्ज एफ.डेल्स ने ह्वीलर की स्थापना ध्वस्त करते हुए लेख लिखा : 'मोहनजोदड़ों का मनगढंत हत्याकाण्ड'। १९६६ में सिंधुघाटी की सभ्यता पर अपनी पुस्तक के दूसरे संस्करण में ह्वीलर ने माना कि आर्यों द्वारा मोहनजोदड़ों के विध्वंस को प्रमाणित नहीं किया जा सकता, पर इससे पहले १९४९ में पाकिस्तान क्वाटर्ली में ह्वीलर का एक लेख और छपा – 'पाकिस्तान चार हजार साल पहले'। पाकिस्तान के जन्म को अभी दो साल भी न हुए थे। डॉ. शर्मा ने इस प्रसंग में व्यंग्य करते हुए लिखा है कि १९५० में ह्वीलर की पुस्तक छपी – 'पाकिस्तान के पाँच

Scanned with OKEN Scanner

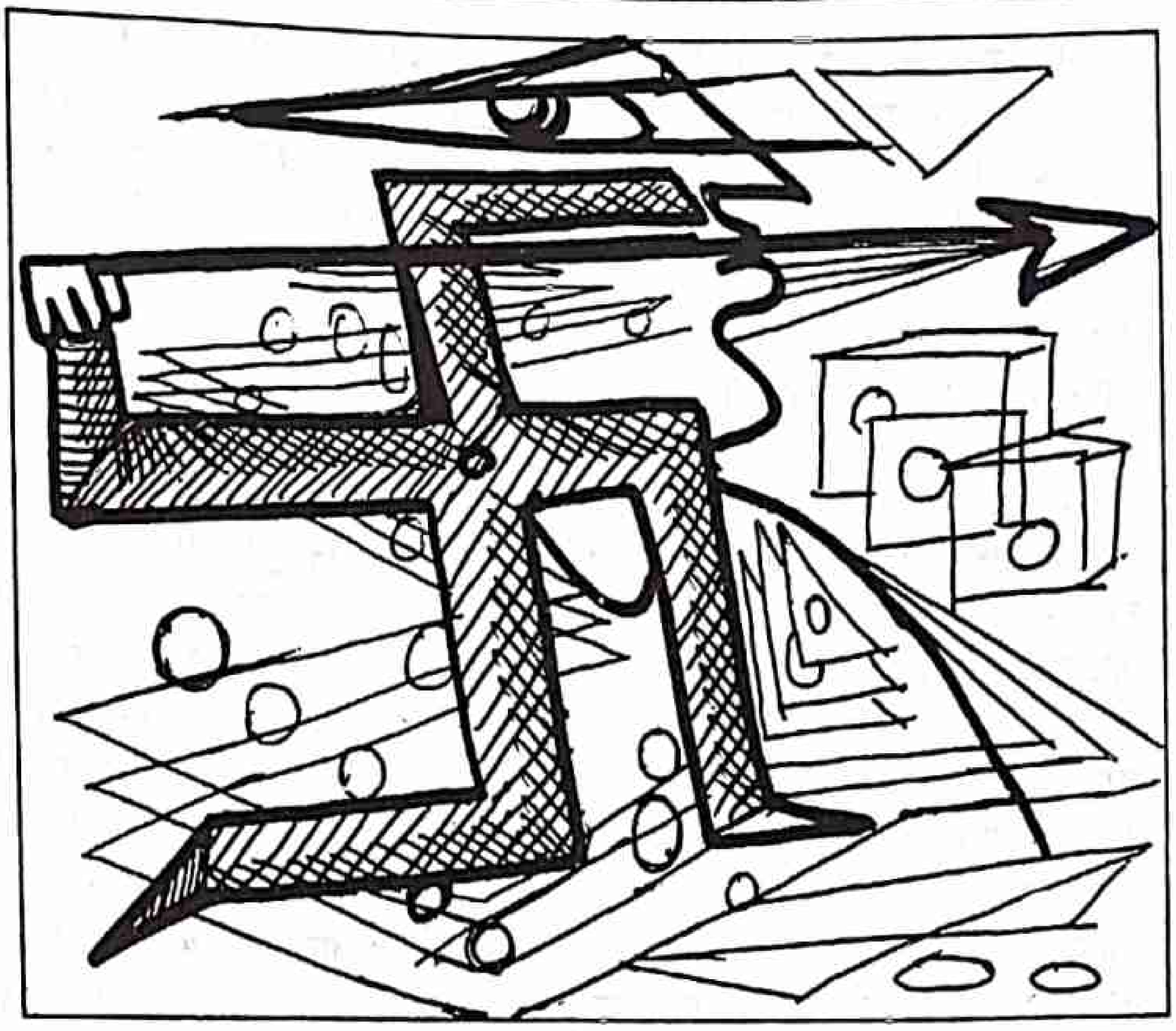

जार साल : एक पुरातात्विक रूप रेखा' किस्तान के इतिहास में एक हजार साल का ाफा – केवल एक साल में। ऐसे कुटिल ौर झूठे अंग्रेजों की चालबाजी पर इतिहास ी नींव नहीं खड़ी हो सकती थी। आर्यों के षय में फैलाई की भ्रांत धारणा धीरे-धीरे लू की भीत की तरह धराशायी होती चली ई। इस विषय पर अब तक इतना प्रमाणिक ौर पर्याप्त कार्य हो चुका है कि इसकी सूर्य ो दीपक दिखने के समान होगा।

इतिहास को प्रमाणित करने वाले सभी तों से यह प्रमाणित हो गया कि आर्य कोई ाति नहीं है, यह सुसंस्कृत जन समुदाय का ोधन मात्र है। आर्य और द्रविड़ परस्पर रोधी जातियाँ नहीं है, ये दोनों एक ही वैदिक ास्था के जन समुदाय है। आद्य जगद्गुरु ंकराचार्य ने एक स्तुति में अपने को 'द्रविड़ ाशु' कहा है और वह स्वयं आर्यों के शिखर ुरुष हैं। इस प्रकार की भ्रांतियों पर भला कब क विश्वास किया जा सकता था अंग्रेजों के ्रम-व्यूह चारों ओर से ध्वस्त हो गया। आर्यों का मूल स्थान भारत भूमि ही है यह भी निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया। विश्व के प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद के चौथे मंडल के छब्बीसवें सूक्त के दूसरे मंत्र से यह प्रमाणित होता है कि परमेश्वर ने आर्यों को सर्वप्रथम भारत-भूमि ही प्रदान की थी। शतपथ ब्राह्मण (१/८/१६) के अनुसार मनु का हिमालय पर ही अवसर्पण हुआ। महाभारत के वनपर्व (अ० १८७) में जल प्लावन के बाद मनु ने शीर्षता से हिमालय की चोटी से अपना नाव बाँधा। वेद व्यास के वचन यही प्रमाण देते है कि विश्व विख्यात हिमालय के मेरु पर्वत पर एक योजना चौड़े और पाँच योजन विस्तृत भू-भाग पर वेदविद मनुष्य उत्पन्न हुए। यहीं से एरावती, वितस्ता, विशाला, देविका और कुहू आदि नदियाँ निकलीं। यह अमैथुनी सृष्टि थी। ये मनुष्य ब्रह्मा की मानस संतान थे। इसकी स्मृति मानसोद्भव तीर्थ मानसरोवर है।

आज के जैव विज्ञानी अमैथुनी सृष्टि की बात सुन डंडा लेकर मारने दौड़ सकता है। पर, जरूरी तो नहीं कि कोई वैज्ञानिक खोज अंतिम सत्य बन कर खड़ी हों। संभव है विज्ञान इस दिशा में आगे बढ़े, अमैथुनी सृष्टि की समझ पा सके। एक भ्रूण से सौ कौरवों और एक कन्या को बनाने वाले 'विज्ञानपाद' वेद व्यास के कार्य को आज का वैज्ञानिक ठीक से विचार करे तो असंभव नहीं कह सकता। महाभारत में ही देखें तो द्रोणाचार्य, कुम्भजऋषि, कृपी और कृपाचार्य के जन्म के विषय में जो चर्चा मिलती है, उसे आज के वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर नकारा नहीं जा सकता। हिन्दू शास्त्रों में अमैथुनी सृष्टि और अयोनिज जन्म की अनेक चर्चाएँ मिलती हैं जिसे अब तक के किसी तार्किक ने अस्वीकार नहीं किया। अमैथुनी सृष्टि के कुछ प्रमाण भी मिल जाते हैं जिन पर वैज्ञानिक ढंग से विचार हो सकता है। लेकिन योग सिद्ध विषयों पर अभी भी विज्ञान अपने पहुँच नहीं रखता। इसलिए हर संदर्भ में विज्ञान को प्रमाण मानना भोलापन होगा। अभी इस दिशा में विज्ञान कार्य करने में लगा है।

आज की उपनिवेशवादी अर्थशोषक शक्तियाँ वैज्ञानिक खोजों का उपयोग आर्थिक शोषण के लिए कर रही हैं, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी क्रम में एक नयी घटना सामने यह आई है कि विज्ञान का उपयोग बतौर हथियार इतिहास और संस्कृति के क्षेत्र में भी होने लगा हैं। जिस मोर्चे पर हमारे पुरातत्ववेत्ता, इतिहासज्ञ विद्वानों ने पुराने उपनिवेशवादी अंग्रेजों को पटखनी देकर पीटा था और उनकी बोलती बंद हो गई थी ठीक उसी मोर्चे पर इन दिनों पश्चिम के लोग वंशाणु (जीन) की खोज लेकर आ खड़े हुए हैं। फिर उन्होंने आर्यों के मूल स्थान का विवाद खड़ा कर दिया है। यह नई व्यूह रचना बड़ी संश्लिष्ट हैं। इसकी रणनीति बहुत दूर से घेराबंदी करने वाली है। हमें इसके लिए पश्चिमी रणनीतिकारों की पहले पीठ ठोकनी होगी और विज्ञान को खुदा मानने वाले कम्युनिस्ट बंधुओं का भी गुहार लगा होगा कि वे विज्ञान के पक्षपाती होने के कारण चुप नहीं हों, जीन सांख्यिकी के आंकड़ों के चमत्कार को मुँह तोड़ जवाब देने के लिए आगे आए। यह भी उपनिवेशवादी अर्थ शोषक शक्तियों का षड्यंत्र है।

यूताह विश्व विद्यालय के मानव वंशाणुविद् माइकल बामशाड के नेतृत्व में अमेरिकी वैज्ञानिकों ने भारत के कुछ शोधकर्मियों को अपने साथ लेकर एक आक्रमणकारी तथ्य खड़ा किया है, आधुनिक भारत की विभिन्न जातियों के वंशाणुओं के नमूनों की तुलना आधुनिक यूरोपीय और पूर्वी एशियाईयों के वंशाणुओं से की गई है वंशाणु चिन्हों का प्रयोग करते हुए उन्होंने भारतीयों के पिता से मिलने वाले वंशाणुओं की जाँच वाइ-गुणसूत्र से की, माता से मिलने वाले वंशाणुओं की जाँच गुणकणिका के आधार पर। इस अध्ययन के निष्कर्ष अमेरिका के जर्नल जिनोम रिसर्च में प्रकाशित हुए हैं इससे स्पष्ट हुआ है कि भारत की ऊँची जातियाँ यूरोपीय लोगों के अधिक निकट हैं तो नीची जातियाँ एशियाईयों के और यह भी कि हमारे मातृ वंशाणु एक से है लेकिन पितृ वंशाणु भिन्न हैं (इण्डिया टुडे, १ अगस्त, २००१ लेखक सुप्रिया बेजवरुआ, साथ में सम्राट चौधरी)। लेखक द्वय ने लेखन का प्रारंभ पराधीन भारत

Scanned with OKEN Scanner

में अंग्रेज जनगणना आयुक्त सर हर्बट रिस्ले द्वारा १९०१ में की गई जनगणना के तथ्यों से किया गया है, जिसमें रिस्ले ने अपनी विभेद बुद्धि से अंग्रेजीराज को स्थिर करने के लिए ऊँची और नीची जातियों का भेद रंग-रूप को आधार बनाकर किया था। ध्यान रहे कि प्राणी शास्त्र के अध्ययन के लिए खोपड़ियों के आधार पर हेमेटि सेमेटि आर्य मंगोल आदि का एक कल्पिक वर्गीकरण किया गया है जिसकी कोई प्रमाणिकता सिद्ध नहीं होती। हामी और सामी एक ही वंश की दो धाराएँ है; आर्य भी कोई जाति नहीं है, मंगोलों से मिलते-जुलते पहाड़ के लोगों में भी आर्य हैं। वास्तविक धरातल पर खोपड़ियाँ का वर्गीकरण प्रमाणिक नहीं है। साथ ही भारत की मूल जातियों और वर्ण व्यवस्था आधारित रूढ़ हुई तथाकथित जातियों की समझ जिसके आधार पर ऊँच-नीच जातियों की बातें उठी अंग्रेजों को नहीं रही है। भारत की प्रत्येक जातियों में कर्म के अनुसार निजी वर्ण व्यवस्था प्रचलित रही है। ब्राह्मण, क्षेत्रीय, वैश्य, शूद्र, वर्णों के कर्मानुसार भेद कोई जाति नहीं है – यह वर्ण है। यह किसी भी जाति की अपनी समाज व्यवस्था में प्रचलित हुई देखी जाती हैं। काले रंग के अथवा चिपटे नाक के भी ब्राह्मण या क्षेत्रीय देखे जा सकते हैं। इनमें खोपड़ी का वर्गीकरण कारगर नहीं हो सकता। चूँकि रिस्ले का काम भारतीय समाज को खंड-खंड तोड़ना था, पराधीनता में छिन चुकी अजीविका के साधनों के कारण पतित हो रहे समाज को दासता की बेड़ी में बाँधकर रखना था, उसे मनमाना काम करना था – उसे किसी वास्तविकता से कोई मतलब नहीं था। आज की परिस्थिति वही नहीं है। ऊँच-नीच की परिभाषा को भारत की वर्तमान परिस्थिति ने काफी बदल दिया है। पहले के उपेक्षित जन समुदाय ने भी यह जान लिया है कि वेद में उनका अधिकार क्या था। सारी शिल्प विद्याएँ, धातु, चर्म, यंत्र और चिकित्सा के ज्ञान उनके हिस्से थीं वास्तु शिल्प के कर्म से जुड़े पेरियार लोग बड़े-बड़े किले बनाते थे। ये विश्व कर्मा विद्या के अधिकारी थे, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। आजकी राजनीति ने सभी भारतवासियों को सत्ता का अधिकार दे रखा है ऊँच-नीच का विभेद इतना गहरा नहीं है कि फूट डालो और राज करो के पुराने जुमले काम आएँगे।

जहाँ तक वंशाणुओं के आधार विभेद पैदा कर आर्यों के मूल को यूरोप से जोड़ने की भ्रामक खोज का प्रश्न है इसके लिए हमारे वैज्ञानिकों को भी खोज में जुटना होगा कि यूरोप के लोगों में भारतीयों के कितने वंशाणु गए हैं। जब प्राचीन विश्व में भारत के लोगों के फैले साम्राज्यों के तथ्य सामने आते हैं इसके पुरातत्व के प्रमाण मिलते हैं कहीं सूर्य मंदिर तो कहीं शैव भग्नावशेष; तब यह स्पष्ट लगता है कि विश्व को आर्य संस्कारों में सुसज्जित करने का अभियान हुआ था।

भारत से प्रतिभाशाली लोगों को यूनान आदि देशों में अनेक प्रलोभन देकर ले जाया जाता था जिस पर हिन्दू धर्म शास्त्रों ने नियम बनाकर प्रतिबंध लगाया था कि समुद्र को लाँघकर जाने वाला व्यक्ति त्याज्य होगा। यह नियम अभी कुछ दशकों पूर्व तक समस्या बना हुआ था। ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यूरोप के लोगों के मानसिक विकास के गणित, ज्यामिति, खगोल, दर्शन आदि के प्रारंभिक आधार की तरह ही कायिक रचना में भी भारतीयों के वंशाणु प्रवेश किए होंगे। संभव है उन्हें आज के वंशाणुविद् पा रहे हों और उन्हें लग रहा हो कि सभ्यता का प्रवाह यूरोप से भारत की ओर हुआ जबकि वास्तविकता जग जाहिर है कि सभ्यता भारत भूमि से बाकी विश्व के लोगों की ओर प्रवाहित हुई थी। आज भी उनके प्राचीन भग्नावशेष धर्म भाषा और अन्य ज्ञान के आदिम स्रोत भारत में सविस्तार उपलबध है जैसे दुनिया भरके प्राचीन सभ्यताओं में स्वस्तिक नामक सुप्रसिद्ध प्रतीक देखा जा सकता है। पर, उसके विषय में पूरी जानकारी और जीवित परंपरा किसी के पास नहीं है, केवल भारत के पास है।

वंशाणुओं की समानता के विषय में सर्वज्ञात है कि यह सभी मनुष्य जातियों में ९९.९९% समान है। वंशाणु की दृष्टि से जाति भेद करना कठिन है। २८ फरवरी २००१ के इण्डिया टुडे में छपे जीनोम परियोजना विषयक लेख में जातियों की समाप्ति के तथ्य सामने आए, लेकिन पुनः अपने ही तथ्यों को रौंदकर यह नस्ल भेद का हथियार भी बना तो किस षड्यंत्र के कारण? क्या रंग भेद पर होने वाले डरबन के सम्मेलन के ठीक पहले जातिभेद को बढ़ावा देकर भारत में सामाजिक विषमता उत्पन्न करने की मानसिकता से इसका कोई सूत्र जुड़ता है? विचार करना होगा कि वर्ण संकरण के आरोप का साहस कैसे जुटाया गया। बामशाद को यह पता नहीं है कि हमारे शास्त्रों में इसे कितनी निंदा से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही जो यूरोप पाँच छह सौ वर्ष पूर्व एक सफेद बर्बर जाति की दशा में दुनिया को लूटने के लिए भटक रही थी, उसमें एकाएक इतना बड़ा दुस्साहस कैसे उत्पन्न हो गया, जो यह कहे कि यूरोप से एशियामाइनर होते हुए बड़ी संख्या में पुरुष भारत आए, एशियाई महिलाओं से उनका संसर्ग हुआ और इधर की जातियाँ उत्पन्न हुईं? इस सिरफिरेपन को कौन सहन करेगा। पहले जीनोम परियोजना वाले यह कह रहे थे कि उनकी खोजों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि अफ्रीका से सभी मनुष्य जातियों का उद्भव हुआ है। अब यूरोप के पल्ले आदिम सभ्यताओं के विकास की गेंद पहुँच गई है। वास्तविकता से दूर वैज्ञानिक तथ्यों के घूँघट उठाकर नये ढंग से वही पुरानी उपनिवेशवादी लड़ाई शुरू की गई है, यदि हम प्रतीक्षा करें तो अभी इस षड्यंत्र के उद्देश्य भी सामने आएँगे, और तब हम इसकी वास्तविकता को सहजता से जान लेंगे।

विज्ञान के नाम पर हर मनगढंत वृत्तांत समाज में स्वीकृत नहीं हो सकता। जब तक समाज शास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, भाषा विज्ञान और धर्मग्रंथों की स्वीकृति नहीं मिलती, किसी सर्वेक्षण और आँकड़ों के आतंक किसी अर्थ के नहीं होंगे।

इन दुष्प्रचारों को माध्यम बनने वाले पत्र-पत्रिकाओं और टी.वी. वालों को यह विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि उनके द्वारा जनमानस तक परोसे जाने वाले विषय से क्या प्रतिक्रिया होगी, कहीं उनकी विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह तो नहीं खड़ा होगा, कहीं उनका उपयोग चौकाने वाले तथ्य बेंचने के लिए अनजाने में तो नहीं किया जा रहा? विद्वतजन जानते है कि मार्टीमर ह्वीलर जैसे लोगों के विचारों का मतलब स्थाई नहीं होता, वह अपने ही तथ्यों को समय आने पर निगल भी सकते हैं। उन्हें 'सत्यंवद' (सच बोलो) का पाठ नहीं पढ़ाया गया है। लिपिबद्ध ज्ञान में सरस्वती के निवास की धारणा उनके यहाँ प्रचलित नहीं है। झूठ से किसी पाप के उत्पन्न होने की जानकारी उन्हें नहीं है। यह संस्कार तो भारतीय जनमानस का है जो लिखे हुए को प्रामाणिक मान लेता है। किसी भ्रांत धारणा की पुस्तक को भी पाँव से ठोकर मारने में संकोच करता है। ▪

Scanned with OKEN Scanner

रपट

ट्रिप्स और दवाओं की सुलभता पर अंतरराष्ट्रीय विचार गोष्ठी सम्पन्न

१९८८ से प्रारंभ हुई नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पेटेंट लॉज़ नामक संस्था ने अपनी छठवाँ अंतरराष्ट्रीय विचार-गोष्ठी ४ जून, २००१ को नई दिल्ली में संपन्न की। यह विचार-गोष्ठी ट्रिप्स और दवाओं की सुलभता पर केंद्रित थी।

मेडिसिन संस फ्रंटियर्स (एम.एस.एफ.) जनेवा और द नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पेटेंट लॉज, भारत के संयुक्त तत्त्वावधान में ४ जून, २००१ को नई दिल्ली में ट्रिप्स और दवाओं की सुलभता पर एक अंतरराष्ट्रीय विचार-गोष्ठी आयोजित हुई। पूरे एक दिन संपन्न हुई इस विचार गोष्ठी में ७५ से भी अधिक वरिष्ठ विशेषज्ञों के साथ २३ विदेश से आए विशेषज्ञों ने भाग लिया।

ट्रिप्स समझौता से संबंधित ज्वलंत विषयों पर हुए इस विचार-विमर्श के छः सत्रों में निम्नलिखित विषय रखे गए -

सत्र-१ : अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में ट्रिप्स।

सत्र-२ : ट्रिप्स के कार्यान्वयन और समीक्षा के विषय

सत्र-३ : अनुसंधान विकास तथा तकनीकी प्रसार में ट्रिप्स के अवरोध।

सत्र-४ : भारत में दवा उद्योग और आवश्यक दवाओं की सुनिश्चित सुलभता में उनकी भावी भूमिका

सत्र-५ : स्वास्थ्य सेवा में ट्रिप्स का अवरोध

अंतिम सत्र में उपरोक्त विषयों पर गहराई से चर्चा हुई।

२. इस विचार-गोष्ठी में अनेक संगठनों के प्रतिभागी सम्मिलित हुए। भारतीय संगठनों के प्रमुख प्रतिनिधियों के नाम इस प्रकार है सर्वश्री डॉ. नित्यानंद, एस.पी. शुक्ल, डॉ. अरुण घोष, प्रो. प्रभात पटनायक, प्रो. अशोक पार्थसारथी, डॉ. पुष्प एम. भार्गव, डॉ. वंदना शिवा, डॉ. गोपा कुमार नायर, श्री दिलीप जी शाह, श्री बी.के. कैला, श्री दिनेश अबराल, डॉ. विश्वजीतधर, डॉ.अमितसेन गुप्त, डॉ. मीरा शिवा, डॉ. एन.एन. महरोत्रा और डॉ. अमिताभ गुहा। विदेशी प्रतिनिधि के नाम इस प्रकार है - डॉ. जेम्स आर विन्स्की, सुश्री एलेन, प्रो. जेरोम एस. रिचमैन, प्रो. फ्रेडरिक एन एबाट, श्री जेम्स लोव, डॉ. ग्राहम ड्यूक एवं डॉ. जफर मिर्जा।

इनमें से अधिकांश व्यक्तियों का मानना था कि ट्रिप्स विकासशील देशों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। वास्तव में यह समझौता विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई को संरक्षण देने और इसे गहरा करते जाने वाला उपकरण है। स्वास्थ्य, दवा और पेटेंट व्यवस्था संबंधी नियम एवं नीतियाँ किसी देश के गरीबों के हित में होनी चाहिए। भारत इस परिप्रक्षय में नेतृव दे सकता है।

विवेचित विषय

३. इस विचार गोष्ठी में विशेषज्ञों ने ट्रिप्स समझौते के भावी विश्लेषण हेतु कुछ महत्वपूर्ण विषयों को पहचाना, जिसके आधार पर विश्लेषण हो सकेगा। विशेषज्ञों ने विकासशील देशों द्वारा ट्रिप्स समझौते के परिपालन में सावधानी रखने पर जोर दिया। इन देशों में लागू आवश्यक सुरक्षा-उपायों की राष्ट्रीय नियमावलियों में परिवर्तन या संशोधन करते हुए गहरी समझ और सावधानी रखने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया।

४. प्रतिनिधियों ने विचार गोष्ठी में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के प्रति बढ़ते आग्रह पर चिंता जतायी इसमें पेटेंट धारकों और उपभोक्ताओं के बीच का पलड़ा पेटेंट धारकों की ओर झुकता चला जा रहा है। इस संतुलन में हो रहे मौलिक परिवर्तन के लिए वक्ताओं ने ट्रिप्स के अनेक तहों वाले विषयों को दोषी माना, वैश्विक स्तर पर भी सामाजिक हित की उपेक्षा कर व्यक्तिगत लाभ को बढ़ावा देने में ट्रिप्स की नजरिया को संदिग्ध बताया। विकसित दुनिया के उन उद्योगों की अर्थव्यवस्था पर निर्भरता बनाने के कारण इस आग में घी पड़ता जा रहा है जो सबलतापूर्वक बौद्धिक सम्पदा संरक्षण की नींव पर खड़ी है। आज दुनिया की सर्वाधिक लाभ कमाने वाली १५ कंपनियों में से ६ दवा और ५ सूचना तकनीकी क्षेत्र की है। यह भी ध्यान दिलाया गया कि बौद्धिक संपदा संरक्षण न केवल उत्पादन क्षेत्र में इन उद्योगों को एकाधिकार दिलाने में सहायक हो रहा है अपितु ज्ञान के प्रचार प्रसार में भी बाधा उत्पन्न कर रहा है।

५. इसी आग्रह का दुष्परिणाम है कि पूरी दुनिया में दवाओं की मूल्यवृद्धि आकाश छूती जा रही है और गरीब दवाओं की सुलभता से वंचित होते जा रहे हैं गरीबों के होने वाली बीमारियों के इलाज के लिए न तो दवाओं की खोज हो रही

Scanned with OKEN Scanner

है और न विकास। इसके विपरीत धनी व्यक्तियों को होने वाले जीवनशैली संबंधी रोगों जैसे नपुंसकता, गंजापन, मोटापा इत्यादि के लिए दवाएँ खोजी जा रही हैं। विचार गोष्ठी में रेखांकित किया गया कि दवा उद्योग दवाओं की महँगाई का कारण अनुसंधान एवं खोज पर बढ़ते खर्च को बताते हैं लेकिन सच तो यह है कि इनकी वास्तविक उपयोगिता नहीं के बराबर है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इनसे केवल लाभ के लिए लाभ नहीं लेती बल्कि मुनाफाखोरी करती है।

६. वक्ताओं ने ट्रिप्स समझौते के विभिन्न उपबन्धो की सहायता से विकासशील देशों द्वारा अपने देशों में सस्ते दवाओं की उपलब्धता बनाने पर जोर दिया। इसके लिए विकासशील देशों में ऐसे प्रावधान बनाने की आवश्यकता है जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एकाधिकार को अस्वीकार करके घरेलू उत्पादकों को भी दवाई बनाने के लिए लाइसेंस दे और इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय बाजार से प्रतियोगी मूल्यों पर दवाओं के आयात को भी प्रोत्साहन दें। यह भी ध्यान दिलाया गया कि इस दिशा में आने वाले वर्ष बहुत महत्वपूर्ण होंगे जब विकासशील देशों के विनियमों को विकसित देश विश्व व्यापार संगठन के विवाद निबटाने वाली अदालत में लेकर जाएंगे जैसे अमरीका ने ब्राजील के खिलाफ विश्व व्यापार संगठन में शिकायत की थी कि 'ब्राजील ने अपने घरेलू उत्पादकों को सस्ते एड्सरोधी दवायें बनाने का अधिकार देकर ट्रिप्स कानूनों का उल्लंघन किया है' इस पर ध्यान रखना महत्वपूर्ण है।

ट्रिप्स का कार्यान्वयन

७. भारत में ट्रिप्स समझौते को लागू करने के लिए पेटेंट (द्वितीय संशोधन) बिल १९९९ लाया गया था जिसे बाद में जाँच एवं रिपोर्ट के लिए एक संसदीय समिति को दे दिया गया। इस समझौते को लागू करने के संबंध में संविधान में दिए गए मूल अधिकारों में 'जीने के अधिकार' का विशेष महत्त्व है। इस पर जोरदार ढंग से कहा गया कि ट्रिप्स समझौते को लागू करते समय वर्त्तमान पेटेंट व्यवस्था में परिवर्त्तन करते हुए संविधान का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। इन पर भी ध्यान दिलाया गया कि इस संबंध में अगस्त २००० में मानवाधिकार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव का भी ध्यान रखना होगा। इस संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव में सभी सरकारों एवं राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संघों से आग्रह किया गया है कि किसी भी तरह की आर्थिक नीतियाँ बनाते समय मानवाधिकारों पर विशेष ध्यान दें। इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि ट्रिप्स समझौते के कार्यान्वयन एवं आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के बीच वास्तविक तथा संभावित विरोध संभव है। संसदीय समिति में पेटेंट (द्वितीय संशोधन) अधिनियम १९९९ पर विचार-विमर्श के दौरान इन चेतावनियों को भी ध्यान में रखना होगा।

८. विदेशी एवं देशी सभी विशेषज्ञों ने कहा कि ट्रिप्स समझौते के अनुसार देश के कानूनों में बदलाव करते समय इस समझौते में मौजूद अधिकतम लचीलेपन का उपयोग करना होगा। इन विशेषज्ञों के अनुसार यह लचीलापन ७, ८, एवं ३१ अनुच्छेद में उपलब्ध है अगर इन अनुच्छेदों उदारतापूर्वक व्याख्या की जाए। पेटेंट व्यवस्था में बद[illegible] करते समय निम्नलिखित सुरक्षात्मक उपायों को समा[illegible] करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया गया।

८.१ ट्रिप्स के वे प्रावधान जिनमें आयात को घरेलू उत्पाद[illegible] समकक्ष मानने की बात की गयी है, की व्याख्या इस[illegible] में नहीं होनी चाहिए कि पेटेंट कोई मुद्दा नहीं है। इस प्रा[illegible] की व्याख्या इस ढंग से होगी कि पेटेंट धारक को जहाँ[illegible] मिला है वहाँ वह इसका उपयोग करे लेकिन घरेलू उत्प[illegible] को भी इस पेटेंट के संदोहन के लिए लाइसेंस देकर [illegible] अधिकार को आवश्यक बनाया जाना चाहिए।

८.२ अनुच्छेद ३१ के व्यावसायिक उपयोग हेतु अ[illegible] लाइसेंसिंग सिस्टम को सरल बनाना होगा। नियंत्रक के[illegible] यह अधिकार होना चाहिए कि वह किसी भी पेटेंट के[illegible] एक युक्तिसंगत विनियमों एवं पेटेंट धारक के जवाब की[illegible] निश्चित समय सीमा तक प्रतीक्षा करने के बाद उस पे[illegible] दोहन के लिए लाइसेंस जारी कर सके। इस संबंध में [illegible] भी तरह के संदिग्धता से बचने के लिए रॉयल्टी की निश्चित मात्रा एवं एक निश्चित समय सीमा तय कर[illegible] चाहिए (जैसे फैक्ट्री के वार्षिक आमदनी पर ८% का या [illegible] ऊपर की रॉयल्टी एवं १५० दिन की एक इंतजार का स[illegible] अगर ये शर्तें कोई भी आवश्यक लाइसेंस लेने वाला [illegible] पूरा करता है तो उसे पेटेंट के उपयोग हेतु आवश्यक ला[illegible] नियंत्रक १०० दिनों के अंदर जारी कर दे। अभीष्ट लक्ष्य[illegible] प्राप्ति के लिए पेटेंट एक्ट में आवश्यक लाइसेंस प्रणाली [illegible] उपलबंध हों।

८.३ अनुच्छेद ३० में पेटेंटेड वस्तुओं पर आगे और अनुसंधान [illegible] विकास के लिए अधिकार की बात की गई है। इस [illegible] में सबसे बड़ा सपोर्ट विश्व व्यापार संगठन की तरफ[illegible] कनाडा एवं यूरोपीय संघ के बीच एक मुकदमें में मिल[illegible] भारत में पेटेंट (द्वितीय संशोधन) बिल में १०७ए नामक [illegible] के पुनर्लेखन की आवश्यकता है ताकि उसमें पेटेंट व[illegible] अनुसंधान, विकास एवं व्यावसायिक उपयोग को शा[illegible] किया जा सके। पेटेंटेड उत्पादों की मार्केटिंग पेटेंट की [illegible] सीमा समाप्त होने या आवश्यक कानूनी अधिकार प्राप्त [illegible] के बाद ही वास्तविक रूप में होगी।

८.४ 'नवपरिवर्तन', 'औद्योगिक उपयोग' तथा 'मौलिक [illegible] जैसे शब्दों की परिभाषा की विशेष व्याख्या करनी होगी [illegible] पेटेंटेड वस्तुओं के लिए लाइसेंस लेने के व्यतिक्रमित प्र[illegible] पर रोक लग सके। इसी तरह जिन खोजों का पेटेंट नहीं [illegible] सकता है उन्हें स्पष्ट रूप से फार्मूलेशन आधारित [illegible] पेटेंटेड मॉलेक्यूल में शामिल किया जाए। इसके अति[illegible] मात्रा में बदलाव कर नए उत्पाद के फार्मूलेशन एवं [illegible] उपयोग को भी पेटेंट की सीमा से बाहर रखना होगा। [illegible] के विविध रूपों यथा 'माइक्रो-आर्गेनिज्म' भी पेटेंट की [illegible]

Scanned with OKEN Scanner

से बाहर रहेंगे। इस पर अभी अंतरराष्ट्रीय बहस चल रही है।

समानान्तर आयात विकासशील देशों के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। जन सामान्य के लिए आवश्यक एवं सस्ती दवायें उपलब्ध कराने और अन्य विकासशील देश जहाँ विकसित दवा उद्योग नहीं है वहाँ की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग के लिए उपयुक्त प्रावधान इस पेटेंट बिल में बनाने होंगे। समानान्तर आयात के कारण दूसरे देशों से आयातित दवाओं की सस्ती मूल्य पर उलब्धता भी नियमों द्वारा निश्चित होनी चाहिए।

ऊपर लिखे गए कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों विशेष रूप से भारत के पेटेंट अमेडमेन्ट बिल में शामिल करने के लिए दिए गए हैं। इसी तरह, ये मुद्दे अन्य विकासशील राष्ट्रों के लिए भी प्रासंगिक है।

ट्रिप्स समझौते का पुनर्निरिक्षण

१. ट्रिप्स समझौते के पुनर्निरिक्षण में ध्यान देने पर हम पाते हैं कि सेक्शन ७ एवं ८ के भाव पर्याप्त मात्रा में सेक्शन ५ में भी विशेष रूप से है। यह भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों को तकनीक के हस्तानांतरण में बहुत सहायता करेगा। यह बौद्धिक संपदा अधिकारों को सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण के लिए उपयोग करने एवं कर्त्तव्यों तथा दायित्वों के निर्वाह में संतुलन बनाने में भी सहायता करेगा। इसी तरह, जनस्वास्थ्य एवं पोषण की सुरक्षा के लिए आवश्यक उपबन्धो को लागू करने एवं अति महत्वपूर्ण सेक्टरों में पब्लिक इंटेरेस्ट को बढ़ावा देना भी संभव होगा। अधिकार धारकों द्वारा बौद्धिक संपदा अधिकारों के दुष्प्रयोग पर भी रोक लगाने में यह सहयोगी होगी।

ट्रिप्स समझौते में २० वर्षों के लिए पेटेंट अधिकार देने की बात की गई है जो वर्तमान में लगातार हो रही नई खोजों एवं तेज बदलाव वाले इस दौर में बहुत बड़ा समय है और अप्रासंगिक है। क्योंकि पेटेंटेड उत्पाद बहुत जल्द ही अपनी महत्ता खो देते हैं। यह परिणाम इस बात को आधार प्रदान करता है कि जेनेरिक उद्योगों के लिए २० वर्षों के पेटेंट अधिकारों की कोई वास्तविक भूमिका नहीं है। ट्रिप्स का २० वर्षों के लिए पेटेंट अधिकार देने के मुद्दे पर भी पुन: निरीक्षण आवश्यक है।

ट्रिप्स के अतिरिक्त

१०. वक्ताओं ने जोर देकर कहा कि –

१०.१ प्रत्येक देश की जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए एक अंतरराष्ट्रीय युक्तिसंगत व्यवस्था बनानी चाहिए। यह व्यवस्था प्रत्येक देश की राष्ट्रीय नीतियों एवं कानूनों के साथ समरस होना चाहिए। इस व्यवस्था में इतना लचीलापन होना चाहिए कि यह प्रत्येक देश की व्यवस्था के साथ सामंजस्य बना सके। बौद्धिक संपदा प्रणाली (शासन) में लचीलापन केवल विकासशील देशों के तकनीकी क्षमता में वृद्धि के साथ ही जुड़ा है। यह वास्तव में ट्रिप्स के एक ध्येय की पूर्ति करता है।

१०.२ इतने ज्यादा विकासशील देशों जो सांस्कृतिक एवं आर्थिक-सामाजिक स्तर पर इतनी भिन्नताएँ रखते हैं के लिए एक तरह के मानदण्ड एवं आदर्श नहीं रखे जा सकते हैं पेटेंट के वैश्विक एकाधिकार जो विज्ञान एवं तकनीक के बहुत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं का एक छोटे से औद्योगिक राष्ट्रों के समूह के पास रहने से व्यापार एवं विनिमय के वैश्विक बहुपक्षीय व्यवस्था की माँग करने वाले विकासशील देशों के औचित्य को ही खत्म कर देगा। ट्रिप्स के अंतर्गत आवश्यक लचीलापन न बनाने पर यह सम्पूर्ण व्यवस्था अनसस्टेनेबल हो जाएगी।

१०.३ ट्रिप्स के प्रावधान विकासशील देशों के बाजार को विकसित राष्ट्रों के उत्पादों के लिए आवरक्षित करने के लिए बनाए गए हैं। ट्रिप्स को लागू करने से स्वदेशी उत्पादन को बढ़ावा देना बंद हो जाएगा। ये इस राष्ट्रों में अग्रणी तकनीक खोज एवं विकास के कार्यों को रोक देंगे। विकासशील देशों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों से केवल विकसित देशों की माँग के अनुसार ग्रेजुएट्स निकलेंगे।

११. विकासशील राष्ट्रों के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक है कि –

११.१ राष्ट्रीय नियमों की बौद्धिक संपदा अधिकारों पर सुपरमेसी बरकरार रहे।

११.२ विकासशील देशों के राष्ट्रीय नियम अधिकारों एवं दायित्वों के अंतरराष्ट्रीय प्रणाली को और अधिक प्रभावित करें और निर्णायक बदलाव लाए। वे निश्चित रूप से विकासशील देशों के विकास एवं उनकी क्षमता में लगातार बढ़ोत्तरी प्रदान करें।

११.३ विकासशील देशों को बौद्धिक संपदा संरक्षण पर अपने राष्ट्रीय नियमों को बनाते समय पेटेंटों के विदेशी मालिकों के अधिकारों को संतुलित करना होगा और उन पर जिम्मेवारियाँ डालनी होगी तभी वे अपने जनता के लिए उन तकनीकों को उचित शर्त्तों पर आसानी से प्राप्त कर पाएंगे।

१२. वैसे तकनीकें जो वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ संग्रहित क्षमता एवं कार्यकुशलता पर आधारित होती है, सम्पूर्ण मानव जाति की साझी विरासत होती है। वर्त्तमान वैश्विक पेटेंट व्यवस्था तकनीक के विनियोजन या निजी लाभ को प्रोत्साहन देती है।

ऊपर दिए गए निर्देश तकनीक के एक विकासशील अव्यावसायिकीकरण की संभावनाएं खोलने में सफल होगी। जिससे विकासशील देशों को तकनीक हस्तानांतरण में तेजी आएगी।

१३. अपने विश्वास को दर्शाने के लिए विकसित राष्ट्रों को अंकटाड के तकनीक पर कोड ऑफ कन्डक्ट पर बातचीत शुरू करना होगा और उसे सम्पूर्ण करने के अभियान के लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छा शक्ति के

Scanned with OKEN Scanner

साथ इस बातचीत में शामिल होना होगा।

एक वैश्विक संघ की धोखाधड़ी

१४. वर्त्तमान में दवा उद्योग की अंतरराष्ट्रीय समीक्षा में एण्टी एड्स दवाओं की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। दवाओं के एक संयोजन जिसे हाइली एक्टीव एण्टी-रेट्रोवायरल ट्रीटमेन्ट (हार्ट) कहते हैं, के द्वारा एड्स के उपचार से विकासशील देशों में एड्स से मरने वालों की संख्या में ८४% तक की कमी आयी है। दुर्भाग्यवश हार्ट उपचार के अति महँगे १२,००० डॉलर प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति होने के कारण पूरे दुनिया में केवल ५% संक्रमित व्यक्ति ही इसका लाभ उठा पाते हैं। वर्त्तमान में जिम्बावे, उगाण्डा एवं आइवरी कोस्ट जैसे देशों को अपने ग्रॉस नेशनल प्रोडक्ट का क्रमशः २६५%, १७२% एवं ८४% अपने देश के एड्स रोगियों के उपचार के लिए दवा खरीदने में खर्च करना होगा। यह मुद्दा ट्रिप्स समझौते के पुनर्निरीक्षण के लिए एक बड़े वैश्विक अभियान में लोगों को एकत्र करने वाले बिंदु के रूप में उभरा है।

१५. बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों की भूमिका की निन्दा ३९ बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा दक्षिण अफ्रीका सरकार के विरुद्ध त्रिटोरिया हाइकोर्ट में मुकदमा दायर करने के बाद से उत्कर्ष पर है। यह मुकदमा दक्षिण अफ्रीका के देश में सस्ती एड्स विरोध दवाएँ उपलब्ध कराने के लिए बनाए गए १९९७ के दवा एवं संबंधित वस्तु नियंत्रण संशोधन अधिनियम संख्या-९० के विरुद्ध दायर किया गया था। १९९८ के इस मुकदमें का समर्थन अमरीका ने दक्षिण अफ्रीका को विशेष ३०१ अवलोकन सूची में रखकर तथा यूरोपीय संघ ने तत्कालीन उपराष्ट्रपति माननीय श्री मबेकी को पत्र लिखकर किया था। इन प्रमुख दवा कंपनियों के इस कदम का वैश्विक स्तर पर व्यापक विरोध एम.एस.एफ. के नेतृत्व में पूरे विश्व में हुआ। अप्रैल २००१ में इन कंपनियों को हार का मुँह देखना पड़ा जब इन्हें अपने व्यवहार के प्रति बढ़ते हुए गुस्से एवं घृणा के कारण यह मुकदमा बिना शर्त्त वापस लेना पड़ा।

१६. लगभग दो माह पहले संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार आयोग में ब्राजील का एक प्रस्ताव ५२ मतों से पारित हुआ। इस प्रस्ताव का विरोध किसी ने नहीं किया केवल अमरीका इस प्रस्ताव पर मतदान के समय अनुपस्थित रहा। इस प्रस्ताव में अन्य बातों के अलावा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देशों से अंतरराष्ट्रीय समझौतों करने के लिए कहा गया है जिससे इसका उपयोग जन स्वास्थ्य नीतियों के समर्थक के रूप हो जिससे सुरक्षित, प्रभावी तथा अफॉर्डेबूल रोधात्मक, आरोग्यकर या उपशामक भेषजीय तथा औषधिय तकनीक की व्यापक उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।" आज तीसरी दुनिया के बहुत से देशों की राष्ट्रीय सरकारें विश्व व्यापार संगठन और विशेषकर ट्रिप्स समझौते के विरुद्ध हो रहे आंदोलनों को समर्थन प्रदान कर रहे हैं।

१७. अफ्रीका, एशिया एवं दक्षिण अमरीका के देश और संगठन जो एड्स विरोधी अभियान चला रहे हैं, भारत को सस्ती दवाओं के प्रमुख स्रोत के रूप में देख रहे हैं। मार्च २००१ में भारतीय दवा कंपनी सिप्ला ने एम.एस.एफ. को मात्र ६०० डॉलर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष के मूल्य पर एड्स की दवाएँ उपलब्ध कराने की घोषणा की, बाद में उसने मूल्यों को और कम कर ३५० डॉलर तक कर दिया। सिप्ला के इस प्रस्ताव के समान ही कुछ ही सप्ताहों के अंदर दो अन्य कंपनियों हेटेरो ड्रग्स तथा रैनबैक्सी ने ऐसे प्रस्ताव किए। ये प्रस्ताव दुनिया के किसी भी अन्य प्रस्तावों की तुलना में बहुत सस्ते हैं। दूसरे शब्दों में भारतीय कंपनियाँ दुनिया के अन्य कंपनियों के मूल्य के १/४०वें मूल्य पर एड्स के लिए ये दवाएं उपलब्ध करा रहे हैं। इस तरह के मूल्य में गिरावट विकासशील देशों में एड्स के इलाज में आमूल परिवर्तन ला देगा जिससे लाखों जानें बचाई जा सकेंगी।

१८. दक्षिण अफ्रीका में ३९ दवा कंपनियों की हार से यह चिंताजनक मुद्दा समाप्त नहीं हो गया है। जो देश अपने यहाँ की जनता के लिए सस्ती दवाएँ उपलब्ध कराने के लिए ट्रिप्स संशोधन का उपयोग करने की कोशिश करेगा उसे अमरीकी विरोध का सामना करना पड़ेगा। लेकिन इससे गरीबों तक दवा पहुँचने से रोकने के लिए ट्रिप्स के उपयोग के विरुद्ध एक वैश्विक संगठन का निर्माण होगा।

१९. ये मुद्दे जटिल हैं। एक तरफ विश्व व्यापार संगठन मानवता की बात करता है : दूसरी तरफ यह भी प्रश्न है कि एड्स के इतने महँगे इलाज के लिए व्यवस्था कौन करे? यही समस्या अन्य तीव्र गति से फैलने वाले विनाशकारी रोगों के साथ है जो विश्व की आबादी के बहुत बड़े भाग को प्रभावित करते हैं और यह समस्या विकासशील देशों में इनके इलाज के लिए दवाओं के अनुसंधान एवं विकास के साथ भी जुड़ा है क्योंकि वे इतना खर्च उठाने की स्थिति में नहीं है। इस मुद्दे पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विश्व व्यापार संगठन एवं बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमों से बात कर रहा है।

२०. भारतीय पेटेंट कानून १९७० में संशोधन के प्रस्ताव पर विचार के लिए गठित संसदीय समिति के पास महत्वपूर्ण कार्य है। यह नया अधिनियम केवल भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि सभी विकासशील देशों के लिए एक मॉडल होना चाहिए। इस अधिनियम में ऐसे प्रस्ताव होने चाहिए जिनसे भारतीय दवा उद्योग न केवल धरोहर आवश्यकताओं की पूर्ति करें बल्कि प्रतियोगी मूल्यों पर विकासशील एवं अविकसित देशों की दवा आवश्यकताओं की भी पूर्ति करें।

नई दिल्ली
जुलाई ४, २००१

बी.के. कैला
संयोजक
नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पेटेंट लॉज

(अनुवाद : धीप्रज्ञ द्विवेदी)

Scanned with OKEN Scanner

विकासशील देशों का अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन

प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने कहा –

विश्व व्यापार के नियमों में भेदभाव नहीं होना चाहिए

■ स्वदेशी संवाद

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विकसित देशों को यह संदेश दे दिया है कि उरुग्वे दौर के समझौते को पूरी तरह लागू किए बिना विश्व व्यापार संगठन के मंच पर किसी नए दौर की वार्ता की कोशिश की गई तो भारत अकेले ही नहीं सभी विकासशील देश इसका पूरजोर विरोध करेंगे। दिल्ली के विज्ञान भवन में विश्व व्यापार संगठन के प्रति विकासशील देशों की चिंताओं पर आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में वाजपेयी ने सीधे शब्दों में कहा कि पहले उरुग्वे दौर के अधूरे एजेंडे को पूरा किया जाए। वाजपेयी ने कहा कि ऐसी मांग करने वाला भारत कोई अकेला देश नहीं है, बल्कि बहुत से विकासशील देश व बहुत से विकसित देश के लोग भी शामिल हैं। वाजपेयी की यह बुलंद आवाज नवंबर में हो रहे दोहा सम्मेलन का मसौदा तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाएगी। प्रधानमंत्री ने कहा कि डब्ल्यूटीओ को विकासशील देशों के संरक्षण और कमजोर देशों की सहायता के लिए काम करना चाहिए। उन्होंने दार्शनिक अंदाज में कहा कि इस असमान दुनिया में सबके साथ समान व्यवहार नहीं हो सकता। लेकिन सकारात्मक व्यवहार का सिद्धांत यह कहता है कि विकासशील देशों को संरक्षण मिलना चाहिए और कमजोर देशों को सहायता और डब्ल्यूटीओ के अस्तित्व में आने से इस सिद्धांत का महत्व कम नहीं हो जाता।

वाजपेयी ने विकसित देशों के कान खोलने के लिए यह खुले तौर पर कहा कि उरुग्वे दौर की वार्ता में विकासशील देशों के साथ किए गए वायदे पूरे नहीं होने के कारण विकासशील देशों के बीच असंतोष बढ़ता जा रहा है। यदि उरुग्वे दौर के एजेंडे पूरे नहीं किए जाते तो नवंबर में होने वाला दोहा सम्मेलन पर बुरा असर पड़ सकता है। वाजपेयी ने कहा कि भारत डब्ल्यूटीओ से भागना नहीं चाहता। देश विश्व व्यापार के किसी भी मुद्दे पर विकसित देशों से बात करने के लिए तैयार है। लेकिन विश्व व्यापार के नियमों में भेदभाव नहीं होना चाहिए। विकसित देशों के लिए अलग और विकासशील देशों के लिए अलग मानदंड नहीं होना चाहिए। वाजपेयी ने चेताया कि कहीं दोहा भी सिएटल सम्मेलन की तरह असफल न हो जाए। क्योंकि विकासशील देश इस बात को लेकर बहुत ही सजग है कि दोहा में उनके हित के मुद्दें जरूर उठाए जाएं। इसके लिए ही सभी विकासशील देश अभी से ही अपनी चिंताएं विभिन्न मंचों पर उठा रहे है।

वाजपेयी ने कहा कि खुला विश्व व्यापार आर्थिक समृद्धि का वाहक हो सकता है। लेकिन इस मुक्त व्यापार का फायदा सभी को मिलना चाहिए। डब्ल्यूटीओ का मुख्य काम विकसित देश, विकासशील देश और कामजोर देशों के बीच भारी अंतर को कम करना होना चाहिए। क्योंकि विभिन्न देशों की आर्थिक स्थितियों में भारी अंतर है। अब तो डब्ल्यूटीओ को सिर्फ गरीबों के लिए काम करना चाहिए। वाजपेयी ने कुछ बड़े देशों के गलत रवैये की भी आलोचना की। कहा कि विकसित देश उन उत्पादों पर ज्यादा से ज्यादा शुल्क लाद दे रहे हैं जिनका उत्पादन विकासशील देश अपेक्षाकृत कम लागत पर कर रहे हैं।

मानव संसाधन मंत्री डॉक्टर मुरली मनोहर जोशी ने भी सभी विकासशील देशों को एकजुट होकर डब्ल्यूटीओ में जाने का आह्वान किया। उन्होंने आशंका जताई कि वित्तीय सेवा क्षेत्र में विदेशी इक्विटी की इजाजत देने का नकारात्मक परिणाम सामने आ सकता है। बैंकिंग और बीमा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के आने से विदेशी संस्थागत निवेशकों का हमारे बाजार में एकाधिकार हो जाने की आशंका है, क्योंकि अपनी गुणवत्ता और सेवा उत्पादों की विविधता से विदेशी कंपनियाँ बाजार में पहली बार तो छा जाएंगी ही। यदि ऐसा हुआ तो परिणाम भयंकर हो सकते हैं, क्योंकि हमारी जनता की बचत विदेशी संस्थागत निवेशकों की जेब में चली जाएगी। चूंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सामाजिक सरोकार से कोई मतलब नहीं, इसलिए बीमा या बैंकिंग क्षेत्र के पैसे से सामाजिक क्षेत्र वंचित हो जाएगा। सामाजिक सुरक्षा के लिए धन की भारी कमी हो जाएगी।

डॉ. जोशी ने भी चेताया कि यदि शिक्षा के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ घुस जाती है तो हमारी संस्कृति और सामाजिक मूल्यों पर गहरा कुठाराघात होगा। डॉ. जोशी ने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में डब्ल्यूटीओ के समझौते को लागू करने में सदस्य देशों की रुचि बहुत ही कम है। अभी तक सिर्फ ४९ सदस्य देशों ने ही शिक्षा के क्षेत्र में डब्ल्यूटीओ के समझौते का पालन किया है। वह भी उच्च शिक्षा और वयस्क शिक्षा के क्षेत्र में। डॉ. जोशी ने कहा कि यह दुख की बात है कि अभी तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कोई अंतरराष्ट्रीय ढाँचा व मानक नहीं बनाया जा सका है।

डॉ. जोशी ने पेटेंट कानून का व्यापक फायदा उठा रहे औद्योगिक देशों के बीच होड़ पर भी चिंता जताई। उन्होंने कहा कि दवा के क्षेत्र में विकसित देशों के एकाधिकार

Scanned with OKEN Scanner

ने यह सवाल पैदा कर दिया है कि विकासशील देशों को जीवन रक्षक दवाएँ भी मिलेंगी या नहीं। जोशी ने कहा कि ऐसी आशंका विश्व स्वास्थ्य संगठन अंकटाड और संयुक्त राष्ट्र ने भी व्यक्त की है। डॉ. जोशी ने आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाए जाने को भारतीय कृषि के लिए गलत कदम बताया। उन्होंने कहा कि इससे भारत के लिए समस्याएँ और बढ़ जाएँगी। क्योंकि विकसित देश कृषि और खाद्य उद्योग को भारी सब्सिडी देकर भारत जैसे विकासशील देशों के कृषि उत्पाद को महंगा करार देंगे। ताकि भारत विश्व कृषि बाजार में टिक नहीं पाए।

विधि मंत्री अरुण जेटली ने भी विकसित देशों की ओर से भेदभाव किए जाने का मुद्दा उठाया। उन्होंने कहा कि जब पूँजी और तकनीक का मुक्त आवाजाही जारी है तो फिर मानव संसाधनों पर रोक क्यों? उन्होंने कहा कि कुछ विकसित देश अलग-अलग बहानों के जरिए भारतीय पेशेवरों को अपने यहाँ आने से रोक रहे है। अरुण जेटली ने कहा कि डब्ल्यूटीओ का लाभ पूरी तरह उठाने के लिए भारतीय श्रम कानूनों में पर्याप्त सुधार की जरूरत है। उन्होंने कहा कि पिछले दस साल में भारत ने यह सीखा है कि अंतरराष्ट्रीय मुद्दों से कैसे निपटा जाए। उन्होंने कहा कि सरकार कंपनियों को गुट बनाकर काम करने, आपस में क्षेत्र बांटने और रणनीतिक रूप से निविदाओं में शामिल होने की छूट नहीं देगी। सिर्फ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की ही इजाजत दी जाएगी। उन्होंने यह भी कहा कि संसद की स्थाई समिति के ठोस अध्ययन के बाद ही प्रतिस्पर्धा विधेयक लागू किया जाएगा। उन्होंने कहा कि किसी भी कंपनी के गैर प्रतिस्पर्धीय व्यवहार को बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। उन्होंने कहा कि सरकार की नजर में यह मामला आया है कि सीमेंट कंपनियों ने आपस में गुट बनाकर आम उपभोक्ताओं से प्रति सीमेंट बोरी ५० रुपए अधिक लिए। अरुण जेटली ने कहा कि प्रतिस्पर्धा विधेयक के जरिए सरकार ऐसे व्यापार व्यवहारों पर रोक लगाएगी।

वाणिज्य मंत्रालय में एंटी डंपिग मामले के निदेशक सिद्धार्थ ने कहा अमेरिका पर डब्ल्यूटीओ के समझौतों का उल्लंघन का आरोप लगाया। उन्होंने आँकड़े पेश कर यह तस्वीर साफ कर दी कि अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोपीय देश डब्ल्यूटीओ के प्रावधान वहीं तक मानते हैं जहाँ तक कि उन्हें फायदा है। उन्होंने डब्ल्यूटीओ की विवाद निपटारा इकाई को भी विकसित देशों का हितपोषक बताया। उन्होंने कहा कि विवाद निपटारा इकाई में मामले को ले जाना इतना खर्चीला और पेचीदा है कि कमजोर देश वहाँ जाना पसंद भी नहीं करेंगे। अमेरिकी कानून में विकासशील देशों की नहीं सुनी जाती। एंटी डंपिंग मामलों को अमेरिका वर्षों लटकाया रखता है। अमेरिका में ४२ फीसदी एंटी डंपिंग और ६३ फीसदी काउंटर वेलिंग ड्यूटी के विवाद का निपटारा ही नहीं होता, जिसके कारण विकासशील देशों को निर्यात बुरी तरह प्रभावित होता है। सिद्धार्थ ने कहा कि अमेरिका में कुल लंबित मामले में १५ फीसदी भारत से भी संबंधित है।

वाणिज्य मंत्रालय के इस निदेशक ने बताया कि १९९८ में अमेरिका ने सिर्फ ११.६ फीसदी एंटी डंपिंग के मामलों पर अंतिम फैसला किया, जबकि १९९९ में सिर्फ ५.४ फीसदी मामलों का। जबकि भारत ने १९९८ में ७९ फीसदी और १९९९ में ७८ फीसदी मामले निपटा दिए। यही नहीं अमेरिका एंटी डंपिंग मामले को निपटाने में औसतन पांच वर्ष का समय लेता है जबकि भारत अधिकतम तीन वर्ष उन्होंने बताया कि डब्ल्यूटीओ के नियमों के अनुसार १२ से १८ माह के अंदर एंटी डंपिंग के विवाद निपटा दिए जाने चाहिए। सिद्धार्थ ने कहा कि भारत डब्ल्यूटीओ के इस नियम का ९० फीसदी मामले में पालन करता है, जबकि अमेरिका दस फीसदी मामले में भी नहीं। अमेरिका में एंटी डंपिंग से जुड़ा एक मामला नौ वर्षों से लंबित पड़ा हुआ है। जबकि कनाडा में ३२ सालों से।

वाणिज्य निदेशक ने बताया कि अमेरिका ने अपने यहाँ एक ऐसा कानून बना रखा है जिसके तहत एंटी डंपिंग का आरोप झेल रहे देशों या कंपनियों को कम से कम तीन लगातार वर्ष में यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वह डंपिंग नहीं कर रही है। उन्होंने कहा कि इस कानून की आड़ में अमेरिका १० वर्ष से भी अधिक समय तक एंटी डंपिंग शुल्क लादे रखता है। सिद्धार्थ ने कहा कि अमेरिका कहीं से भी डब्ल्यूटीओ के नियमों का पालन नहीं कर रहा है।

क्या डब्ल्यूटीओ के महानिदेशक माइक मूरे विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एजेंट है। यह सवाल सार्क सचिवालय के निदेशक अमित दास गुप्ता ने उठाया। अमित दास गुप्ता ने कहा कि मूरे के नेतृत्व में डब्ल्यूटीओ ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा है। उन्होंने सीधे आरोप लगाया कि डब्ल्यूटीओ बड़े कॉरपोरेट घराने और विकसित देश के लिए ही काम कर रहा है। उन्होंने कहा कि विकासशील देशों को यह मुद्दा दोहा सम्मेलन में उठाना चाहिए। सार्क सचिवालय के निदेशक ने कहा कि डब्ल्यूटीओ ने विकासशील देशों और कमजोर देशों को किनारे कर दिया है। महानिदेशक मूरे विकसित देशों के इशारे पर एकतरफा नए दौर की वार्ता की वकालत कर रहे है। जबकि विकासशील देश इसके पक्ष में नहीं है। अमित दास गुप्ता ने सवाल किया कि जब नए दौर की वार्ता पर सदस्य देशों के बीच आम सहमति नहीं है तो फिर मूरे नए दौर की वार्ता के लिए क्यों जोर दे रहे हैं। अमित दास गुप्ता ने कहा कि यदि यह सच है कि मूरे विकसित देशों का एजेंडा आगे बढ़ाने में लगे हैं तो फिर डब्ल्यूटीओ के अस्तित्व पर ही नए ढंग से सोचना चाहिए।

भारत के वाणिज्य सचिव प्रवीर सेन गुप्ता ने भी कहा कि नए दौर की वार्ता के लिए आम सहमति नहीं है। उन्होंने कहा कि अभी भी डब्ल्यूटीओ पर उरुग्वे दौर का साया मंडरा रहा है। सभी विकासशील देशों के सामने अहम मुद्दा यह है कि उरुग्वे दौर के समझौते का पूरी तरह पालन होता है कि नहीं। उन्होंने कहा कि यदि सभी सदस्यों के बीच आम सहमति बनाए बिना नए दौर की वार्ता शुरू होती है तो डब्ल्यूटीओ की समस्या और बढ़ जाएगी। प्रवीर सेन गुप्ता ने भी विकसित देशों के एकतरफा फैसलों की आलोचना की। उन्होंने कहा कि ट्रिप्स समझौते का पालन किए जाने के बावजूद सदस्य देशों को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपनी स्वास्थ्य नीति बना सके और लोगों के

...की रक्षा के लिए आवश्यक दवाओं ...सस्ता उत्पादन कर सके। उन्होंने कहा ...जीवन रक्षक दवाओं के मामले में पेटेंट ...ई नहीं आना चाहिए।

...वाणिज्य सचिव ने कहा कि नए ...की वार्ता के प्रति विकसित देश ...लिए ज्यादा उत्सुक है कि उन्हें इससे ...अधिक फायदा हो सकता है। उन्होंने ...कि नए दौर की वार्ता के एजेंडे में ...प्रमुख बिंदु है। पहला कंपीटिशन इन ...यानी व्यापार में प्रतिस्पर्धा। विकसित ...चाहते हैं कि विकासशील देश अपने ...यों को संरक्षण देना बंद कर दे। ताकि ...कॉरपोरेट ताकतें आसानी से व्यापार पर कब्जा कर सकें। नए दौर की वार्ता का दूसरा एजेंडा सरकारी खरीद से है। मौजूदा समय में सदस्य देश अपनी जरूरतों के अनुसार भंडारण कर सकते है। सरकारें जिस कंपनी से चाहे सरकारी खरीद कर सकती है। अब विकसित देश चाहते हैं कि विकासशील देश की सरकारें कंपनियों के लिए कोटा सिस्टम बंद कर प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में उतर कर खरीदारी करें। इसके अलावा एजेंडे में मल्टी लेटेरल इनवेस्टमेंट और इंडस्ट्रीयल टैरिफ एग्रीमेंट भी शामिल है।

विकसित देश काफी दिनों से यह चाहते हैं कि वे पूंजी निवेश सदस्य देशों के बताए क्षेत्रों में न कर अपनी मर्जी के क्षेत्र में करें और उन पर कोई रोक टोक नहीं हो। प्रवीर सेन गुप्ता ने कहा कि विकसित देशों की यह मंशा सभी विकासशील देश जानते हैं इसलिए नए दौर की वार्ता का विरोध किया जा रहा है। गुप्ता ने यह भी कहा कि डब्ल्यूटीओ ने इस संबंध में अध्ययन के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त कमेटी का भी गठन किया है। अभी तक इस कमेटी ने कोई रिपोर्ट नहीं दी है। भारतीय वाणिज्य सचिव ने कहा कि जब तक कमेटी की रिपोर्ट नहीं आ जाती तब तक नए दौर की वार्ता के लिए जोड़-तोड़ नहीं किया जाना चाहिए। ■

...किसानों के हित में एक ऐतिहासिक सभा

■ *शम्भू सिंह राव*

जोधपुर में स्वदेशी किसान पंचायत ने ...किसानों के हित पर छाए संकट के खिलाफ ...सभा आयोजित की। इस सभा में स्वदेशी ...जागरण मंच के अखिल भारतीय संगठक श्री ...मुरलीधर राव ने कहा कि देश के विकास के ...लिए सर्वप्रथम किसानों के हितों की रक्षा ...उनका दायित्व है। विदेशी पूंजी के सहारे कभी ...देश का विकास नहीं होता। वे जयनारायण ...व्यास स्मृति भवन में स्वदेशी जागरण मंच व ...भारतीय किसान संघ के तत्वाधान में हुई ...स्वदेशी किसान पंचायत में अपने विचार व्यक्त ...कर रहे थे।

उन्होंने कहा कि केंद्र तथा राज्य सरकारें और नेता किसानों के उत्थान व हितों के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते है लेकिन दूसरी ओर विश्व व्यापार संगठन की आड़ में उन्हें अपने मूल व्यवसाय से विमुख करने का प्रयास किया जा रहा है। सरकार सदैव औद्योगिक विकास के लिए चिंता करती है लेकिन किसानों के हितों को नजरअंदाज कर दिया जाता है। उन्होंने आरोप लगाया कि सरकार बंद पड़े उद्योगों को पुनः चालू कराने के लिए मनमाना अनुदान देती है जबकि अधिकांश उद्योग-धंधे फसलों पर आधारित होते है। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि किसानों के हितों की रक्षा के लिए शीघ्र ही कोई निर्णय नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब किसानों को मजबूरन आंदोलनात्मक रुख अपनाना पड़ेगा। एक उदाहरण के तौर पर उन्होंने कहा कि अमरीका तथा यूरोप में किसानों की संख्या का जिक्र करते हुए कहा कि वहाँ क्रमशः आधा प्रतिशत और फ्रांस में सर्वाधिक १२ प्रतिशत किसान है। इतनी कम संख्या में होते हुए भी वहां करीब ३०० प्रतिशत तक अनुदान देने से वहाँ समृद्धि है इसके विपरीत हमारे देश में विश्व व्यापार संगठन की आड़ में सिर्फ तीन प्रतिशत अनुदान दिया जा रहा जो बहुत ही कम है। इसके बावजूद सरकार इन विषमताओं को नजरंदाज करते हुए उनसे प्रतिस्पर्द्धा की बात करती है, जो किसी भी मायने में तर्क संगत नहीं है।

उन्होंने कहा कि यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे किसानों को निरक्षर एवं अनाड़ी कह कर उन्हें तिरस्कृत मान लिया गया है। जबकि किसान स्वयं करीब पांच हजार वर्ष पहले की विरासत को संजोए हुए अब तक पारंपरिक रूप से खेती कर रहे है विश्व में ऐसा उदाहरण और कहीं नहीं मिलेगा। केवल अक्षर ज्ञान को ही साक्षरता का आधार मान लेना सर्वाथा अनुचित है। उन्होंने किसानों को मौसम विज्ञानी, भू-विज्ञानी की संज्ञा देते हुए कहा कि वह अपनी इस कला में इतना पारंगत है कि उसे किसी कृषि वैज्ञानिकों की सलाह की जरूरत महसूस नहीं होती। जब से सरकार ने हरित क्रांति की आड़ में उसे अच्छी फसल लेने को भ्रमित किया तब से किसान को हर दृष्टि से नुकसान उठाना पड़ा है। रही सही कसर कृषि वैज्ञानिकों ने विदेशी कंपनियों के दबाव एवं प्रलोभन में उन्हें आधी अधूरी जानकारी देकर पूरी कर दी है।

उन्होंने अभियान को ऐतिहासिक बताया और कहा कि बिना किसी जाति, समुदाय, वर्ग के हितों को अनदेखा कर सिर्फ किसानों को जागरूक बनाने का एक सार्थक प्रयास रहा। उन्होंने केंद्र सरकार के उस वक्तव्य एवं प्रचार की निंदा की जिसमें बताया गया कि भारत में विपन्नता अब नहीं रही है और देश में विपुल उत्पादन हो रहा है। यदि यह सत्य है तो किसानों को अब अपने अस्तित्व के बारे में क्यों सोचने को मजबूर होना पड़ रहा है। अब वह भावी पीढ़ी को खेती करने के बजाय क्यों पढ़ा लिखा कर नौकरी करने की बातें करने लगे है? इन सभी ज्वलन्त प्रश्नों का उत्तर देना होगा। यह बड़ी खेदजनक बात है कि किसानों का शोषण हो रहा है और विश्व व्यापार संगठन के नाम पर सात हजार मील दूर बैठे विदेशी हमारे किसानों के हितों का रास्ता तय करे यह कैसे संभव है।

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय किसान संघ के महामंत्री एवं कृषि विशेषज्ञ श्री रतनलाल डामा ने कहा कि एक ओर परंपरागत खेती से पैदावार कम होती है तथा दूसरी ओर आधुनिक खेती से किसानों को कोई लाभ नहीं मिल रहा है। गत पांच वर्षों में जिस प्रकार बिजली के दाम बढ़े है एवं मूल्य वृद्धि के कारण लागत मूल्य में करीब पांच गुना वृद्धि दर्ज हुई है। उन्होंने कहा अच्छी उपज लेने के नाम पर किसानों को उच्च किस्म के बीज, खाद एवं कीटनाशक उपयोग करने पर जोर दिया। नतीजन मथानियाँ में मिर्च एवं बिलाड़ा में व्यापक रूप से कपास की पैदावार होने लगी। लेकिन रासायनिक खादों के उपयोग के परिणामस्वरूप उनके खेत बंजर होने लगे है। किसानों को लागत मूल्य नहीं मिलने के कारण अपनी फसल न्यूनतम स्तर के दामों पर बेचने के लिए मजबूर है। रासायनिक खाद की तरफदारी करने वाले वैज्ञानिक स्वयं अब इसके दुष्परिणामों को जानकर कार्बनिक खाद डालने की सलाह देने लगे है। उन्होंने आरोप लगाया कि सरकार की इस नीति से बड़ी संख्या में उद्योग धंधे बंद होने लगे है।

सभा में अर्थशास्त्री रामचंद्र सिंह राजपुरोहित ने कहा कि कृषि ही एक मात्र ऐसा व्यवसाय है जिसमें बेईमानी की गुंजाईश बहुत कम रहती है। कृषि को पवित्र कार्य की संज्ञा देते हुए उन्होंने कहा कि उन्नतशील किसानों द्वारा आत्महत्या करने की घटनाएँ राष्ट्र के लिए शर्मनाक है। सरकार डब्ल्यू.टी.ओ. के साथ समझौता कर आर्थिक गुंलामी के द्वार पर अग्रसर है। इसका पुरजोर विरोध किया जाना चाहिए। उन्होंने चिंता व्यक्त की कि जो राजनेता जोड़े तथा कृषि उपकरणों के बारे में कुछ भी नहीं जानते वे ही आज किसान नेता बन गए है। इस परिस्थिति में किसानों के उद्धार की कैसे कल्पना की जा सकती है?

इस अवसर पर भारतीय किसान संघ के प्रदेश संगठन मंत्री भागीरथ चौधरी ने सभा को सम्बोधित करते हुए विश्व व्यापार संगठन तथा खेती पर समझौते के बारे में विस्तृत जानकारी दी और कहा कि इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए हस्ताक्षर अभियान चलाकर सरकार को किसानों के हितों, उनके पंच फैसले के बारे में अवगत कराया जाएगा।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए कृषि विशेषज्ञ बद्री सांखला ने मौजूद किसानों को पारंपरिक खेती एवं उर्वरा शक्ति बढ़ाने के प्राकृतिक उपायों की जानकारी दी।

पंचायत के अंत में पंच फैसले को सुनाकर सर्व सम्मति ली गई। पंच फैसले में प्रधानमंत्री से आग्रह किया गया कि विश्व व्यापार संगठन से भारत के कृषि क्षेत्र को मुक्त किया जाए। खेती पर समझौता भारतीय कृषि को नष्ट करने की साजिश है। पंच फैसले में कहा गया कि माह नवम्बर में 'कतर' में आयोजित होने वाली डब्ल्यू.टी.ओ. की बैठक में भाग लेने के लिए भारत से किसान प्रतिनिधि एवं कृषि विशेषज्ञों को शामिल किया जाए तथा पंचों ने कहा कि भारत को किसी भी दबाव से घबराने की आवश्यकता नहीं है। भारत के किसान डब्ल्यू.टी.ओ. से लड़ने को तैयार है।

प्रारंभ में बाहर से आए किसान पंचों व अथितियों का साफा पहना कर स्वागत किया तथा राष्ट्र गीत वंदेमातरम् से कार्यक्रम की शुरूआत हुई। सभा में बाड़मेर, जैसलमेर, नागौर, जालोर, बीकानेर एवं सीकर आदि जिलों के किसान पंचों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन स्वदेशी जागरण मंच के प्रांतीय सहसंयोजक डॉ. रणजीत सिंह ने किया। ■

भारत सेना के शस्त्रागार अब विदेशियो की कृपा पर होंगे

■ जितेन्द्र नाथ जोशी

भारत की सामरिक शक्ति का विकास आत्मनिर्भरता पर आधारित है। हमारी आयुध कारखाना हर प्रकार की बंदूके, तोपें, गोले बारूद, हथियार आदि बनाने में संसार में किसी से पीछे नहीं। विभिन्न हथियारों के कलपुर्जे भारतीय लघु उद्योगों द्वारा बनाए जाते हैं। यह कार्य रक्षा विभाग की मांग तथा विशेष आवश्यकता के अनुसार होता है (या अब तक होता था)।

१९६२ में चीन के आक्रमण में हमारी हार तो हुई, पर एक अच्छा परिणाम यह निकला कि हम हथियारों के क्षेत्र में स्वाभिमान के साथ आत्मनिर्भर होकर खड़े हो गए। हमारा माल अच्छा तथा सस्ता भी था। उसका एक प्रमुख कारण यह था कि लघु उद्योगों को एक करोड़ तक के उत्पादन पर उत्पाद कर नहीं लगता था।

लेकिन विदेशी लौबी को यह पसन्द नहीं था। २८ फरवरी, २००१ को मा० वित्तमंत्री जी ने अपने भाषण में कहा कि सेंट्रल एक्से साइज धारा क्रमांक ६/२००१ तथा ८/२००१ (दिनाँक १/३/२००१) के तहत जो लघु उद्योग रक्षा विभाग को कलपुर्जे बनाकर देते हैं उन पर ३२% उत्पाद कर लगेगा। अर्थात् इन उद्योगों को दण्डित किया गया क्योंकि यह बेचारे अपने देश की रक्षा पंक्ति को सुदृढ़ कर रहे थे।

इसका अर्थ यह है कि एक छोटा उद्योग जिसका वार्षिक उत्पादन मात्र एक लाख का उसको ३२००० रुपए कर देना होगा। केवल इसलिए कि वह बेचारा सेना को माल देता है जबकि अन्य उद्योगों को अभी भी एक करोड़ तक की छूट है।

अर्थात् यदि आप वर्ष में करोड़ की बालटियाँ बनाते हैं तो आपको उत्पाद कर से छूट है पर आपने यदि बंदूकों, तोपों के कुलपुर्जे या तोप के गोले के खोल बनाए तो आप पर ३२% उत्पाद कर लगेगा।

दूसरी ओर यही कलपुर्जे आयात किए जाए तो सामान्य छूट संख्या १० के तहत आयात कर शून्य है। इस प्रकार हमारी सेना को झक मार कर सैन्य सामग्री विदेशों से आयात करनी पड़ेगी। स्वदेशी अस्त्र-शस्त्र उद्योग की कब्र पर विदेशी आयातित सैन्य सामान आएगा। क्या इससे हमारा देश सामरिक दृष्टि से विदेशों का बंधक बनकर न रहेगा? ■

Scanned with OKEN Scanner

श्रद्धांजलि

प्रो० एम० जी० बोकरे

१६२६ - २००१

स्वदेशी जागरण मंच के अखिल भारतीय संयोजक और प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो. एम.जी. बोकरे नहीं रहे। १६/८/२००१ को उनका देहान्त हो गया। पिछले कुछ मास से प्रो. बोकरे गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। इनका जन्म १४ मई, १६२६ को हुआ था।

प्रो. बोकरे का व्यक्तित्व हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। मार्च, १६६० को सम्पन्न हुई त्रिदिवसीय स्वदेशी जागरण मंच की चिन्तन बैठक में पूज्य राष्ट्रऋषि दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने बोकरे जी का इन शब्दों में उल्लेख किया था –

''यहाँ बोकरे जी का एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख आवश्यक है। बोकरे जी कट्टर कम्युनिस्ट रहे। यूनिवर्सिटी में इन्होंने अपने क्लास रूम का उपयोग कम्युनिस्ट पार्टी के भर्ती के लिए किया। ये संघ परिवार के विरोधी थे, संघ पर टीका टिप्पणी करने वाले थे, आर.एस.एस., भारतीय मजदूर संघ और व्यक्तिगत मेरे भी विरोध थे। ऐसे थे हमारे बोकरे जी। इन्हें राष्ट्रीय संयोजक बनाया गया। इन्होंने 'थाट फॉर डिस्क्राइब हिन्दू इकानॉमिक्स' नामक एक शास्त्रसिद्ध ग्रंथ लिखा। हिन्दू इकॉनामी के विभिन्न पक्षों पर अलग-अलग लेख और पुस्तकें आई होंगी। किन्तु, वर्तमान परिस्थिति में समग्र रूप से सभी आयामों को लेकर यह पहला ग्रंथ आया। इस ग्रंथ को एकेडमिक क्षेत्र में काफी मान्यता प्राप्त है। लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स में इसका विमोचन हुआ। यहाँ के ग्रंथालय में इसे रखा गया। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और हैदराबाद मुस्लिम यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर रहे मिस्टर खुशरो ने दिल्ली में हुए एक सेमीनार में प्रकट रूप से हिन्दू इकोनॉमिक्स की तारीफ की।'

उन्हें लेखन के लिए शेनॉय पुरस्कार आरौर प्रतिष्ठित 'अनंत गोपाल शेवडे' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। वे कपास उत्पादक किसान संघ के संस्थापक थे और स्वदेशी जागरण मंच की स्थापना से ही इसके अखिल भारतीय संयोजक रहे।

स्वदेशी पत्रिका परिवार उनकी दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए भगवान से प्रार्थना करता है और शतकोटि श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

अमेरिका में रख दी गयी है देश की जैव सम्पदा

भारत एक गरीब देश है, आप सब सुनते आ रहे है। देश में बहुत से लोग इसे मानते-कहते-और महसूस करते हैं। इसके विपरीत अमेरिका एक धनी देश है उस पर आर्थिक निर्भरता के कारण उसका अंकुश भी आर्थिक प्रतिबंध के नाम से जाना जाता है। पर, अमेरिका एक दरिद्र देश है वहाँ बड़े-बड़े चोरों-लूटेरों के अड्डे हैं जो दूसरे देशों की सम्पत्ति लूटकर कानूनी संरक्षण पाते है और भारत एक सर्वसमद्ध देश है जिसकी सम्पदा पहले विदेशी आक्रांताओं ने तो लूटा ही, आज भी उन आक्रांताओं के वंशज लूट रहे हैं यह तथ्य भी कम सच नहीं है।

अमेरिका इस समय २०० अरब डॉलर की जैव तकनीक उद्योग चला रहा है। इस उद्योग में उसकी लूटी हुई भारतीय जैव सम्पदा कितनी है? इससे उसको प्रतिवर्ष कितने का लाभ है? आगे आने वाले समय में वह इस सम्पदा से कितना कमाएगा? इस विषय पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि अमेरिका की समद्धि में भारतीय जैव सम्पदा की भूमिका सबसे अधिक होगी। बासमती चावल की गुणवत्ता को जैव तकनीकी से निकाल कर राइसटेक नाम की एक अमेरिकी कम्पनी ने उसका पेटेंट करा लिया है इसका दुष्प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप के इस अनोखे चावल के बाजार पर पड़ेगा। अब. राइसटेक बासमती को नए नाम टेक्सासमती और कालामती से बेचेगा। टेक्सास और कैलिफोर्निया की जमीन पर बासमती की नई प्रजाति विकसित करने के साथ राइसटेक बासमती पर पेटेंट का दावेदार बन गया है।

इस चोरी की सुविधा राइसटेक को कैसे प्राप्त हुई? इसका सूत्र हरित क्रांति के नारे से शुरू हुई भारत में कषि क्षेत्रों की तथाकथित प्रगति के साथ जुड़ा हुआ है। इसी समय एक ओर भारत की कषि को उन्नत करने के नाम पर संकर बीजों रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रचलन बढ़ रहा था, दूसरी ओर विदेशी एजेंसिया भारत के विभिन्न गुणवत्ता वाले पौधों पर नजर डाले हुई थीं। अंतरर्राष्ट्रीय कषि विशेषज्ञ भारत में आकर यहाँ की जैव सम्पदा अपने देश में ले जाने के प्रयास करने लगे थे। इन्होंने एक ऐसा अंतरर्राष्ट्रीय केंद्र बनाने की योजना बनाई जिसमें विश्वभर के पौधों के 'जर्म' रखे जाए। विश्व संम्पदा के रूप में सभी देशों की जैव सम्पदा घोषित की जाए। इस काम को. देश के सिरफिरे सरकारी तंत्रों ने भी सहयोग देना शुरू किया और कुछ निजी एजेंसियों ने भी पैसा लेकर भारत के पौधों की प्रजातियाँ एकत्र कर विदेशियों को देना शुरू किया। आरंभ में इनके अट्ठारह केन्द्र दुनिया में बनाए गए। बाद में अमेरिका ने इन जीन बैंकों को सुरक्षा के नाम पर अपने यहाँ बटोर लिया। विश्व के बहुतायत पौधों के जीनों का बैंक १६७० के दशक से फोर्ट कालिन्स, अमेरिका में एकत्रित कर दिए गए। मूर्ख के पास धन हो तो चालाक खाने बिना नहीं मरेगा यह कहावत हकीकत बनकर सामने आई। भारत की संसद इस बात से बेफिक्र है कि बासमती पर कोई हमला नहीं हुआ है। इसकी अलग विकसित प्रजाति पर हमारा अधिकार कैसा? कल होकर सभी उपयोगी भारतीय जैव सम्पदा नीम, हल्दी, आँवला को कुछ बदले हुए नाम से अमेरिकी कंपनियाँ बेचकर मालोमाल होंगी।

Scanned with OKEN Scanner

जोधपुर में स्वदेशी किसान पंचायत को सम्बोधित करते हुए स्व०जा०मं० के अखिल भारतीय संगठक श्री मुरलीधर राव

स्वदेशी किसान पंचायत की सभा का एक दृश्य

स्वदेशी खाद "धन्नजय" का प्रयोग करें।

INDO JAPAN AGROTECH. LTD.

(Manufacturer of : "Dhnanjay " Bio Organic Fertilizer)

"धन्नजय" कार्बनिक जैविक खाद के निर्माता

Head Office : 100-A, Cycle Market, Jhandewalan Extn. New Delhi-1100055
Tel.: 91-011-3617013 Fax : 91-011-3556436 Res.: 2260773, 2264642 Mobile 98100-17327
Factory : GIDC-Tharsa, Gujrat

आपकी अपनी स्वदेशी कम्पनी

ईश्वर दास महाजन द्वारा स्वदेशी जागरण फाऊंडेशन के लिए कुमार ब्रदर्स प्रिटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित एवं ६०, नॉर्थ एवेन्यू से प्रकाशि